चमकदार मोती

हिंसक मोती

शिव के नियम

(१) शिव का उद्देश्य संत महात्माओं की अमृतवाणी द्वारा देश की सभ्यता व शिष्टाचार तथा सामाजिक, मानसिक शारीरिक आत्मिक स्थिति में सुधार करना तथा घर बैठे सत्सग का लाभ कराना है 'शिव' महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज व परमसंत फकीर चन्दजी महाराज के लेखों को विशेष रूप से प्रकाशित करता है ।

(२) 'शिव' हर मास की प्रथम व द्वितीय तिथि को निकलता है इसका वार्षिक मूल्य ६) रु० है

(३) ग्राहकों को चाहिये कि पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर और अपना पता साफ-साफ लिखें उत्तर के लिये कार्ड आना जरूरी है

(४) यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न मिले तो पहिले अपने डाकखाने में पूछताछ करें यदि न मिले तो डाकखाने के उत्तर सहित पत्र आने पर एक हफ्ते के भीतर ही दूसरी प्रति भेज दी जायगी

(५) प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर 'शिव' के नाम आना चाहिये

(६) सम्पादक सम्बन्धी पत्र व्यवहार देवीचरन मीतल स० सम्पादक 'शिव' लेखराज नगर, अलीगढ़ के नाम करना चाहिये

मैनेजर—शिव साहित्य प्रकाशन मंडल
पोस्ट दयाल नगर (अलीगढ़)

सूचना

महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज तथा संतों की वाणी को दयाल मासिक पत्र, उर्दू में प्रकाशित करता है

पता—राधास्वामी जनरल सतसंग, हनम कुन्डा, (वारंगल, आन्ध्र प्रदेश-वार्षिक मूल्य ६।) रु०

'मनुष्य बनो' पत्रिका में संतों के बचन प्रतिमास प्रकाशित होते हैं वार्षिक मूल्य ४) पता—'मनुष्य बनो' कार्यालय (दयाल कम्पाउन्ड) पेचे जामा जी, वाटर वर्क्स रोड, अलीगढ़

* चमकदार मोती *

(ले० महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज)

स० सम्पादक—

देवीचरन मीतल

लेखराज नगर, अलीगढ़

सम्पादक, प्रकाशक—

नन्दू भाई

शिव साहित्य प्रकाशन

दयाल नगर, अलीगढ़

अक्टूबर १९७१ | सर्वाधिकार सुरक्षित | मू० १)

आवश्यक सूचना

मनुष्य बनो

श्री मुन्शीलाल जी 'विश्व प्रेमी' के परलोक सिधारने की सूचना हम पहिले अंक में दे चुके हैं। अब परम दयाल फकीरचन्द जी महाराज ने आगे 'मनुष्य बनो' को चालू रखने के लिये मुझे आज्ञा दी है। मैं यथाशक्ति उसको समय पर प्रकाशित करने तथा अमूल्य सामग्री भेट करने का पूरा प्रयत्न करता रहूँगा। हमारे प्रेमी भाइयों को चाहिये कि इसका अधिक से अधिक प्रचार करें इसके नये-नये ग्राहक बनायें तथा हर प्रकार से सहयोग प्रदान करें। जो भाई जहां कहीं इसके ग्राहक हों उनको सूचना दे दें कि वह आना सही पता और अपना चन्दा तुरन्त मेरे पास भेजदें ताकि 'मनुष्य बनो' समय पर ठीक तरह से चलता रहे। जुलाई अगस्त का अंक सबको भेज दिया गया है।

— देवीचरन मीतल
सम्पादक 'मनुष्य बनो'
लेखराज नगर, अलीगढ़

आवश्यक निवेदन

समस्त महानुभावों की सेवा में निवेदन है कि मेरी आँखों की रोशनी कम हो गई है। लिखना पढ़ना व बाहर आना जाना बन्द है अतः कोई सज्जन पत्र व्यवहार करने का कष्ट न उठायें।

क्षमा प्रार्थी
गोपीलाल कृषक
पो० खंडेहा
जिला अलीगढ़ (उ०प्र०)

जिन ग्राहकों ने शिव व 'मनुष्य बनो' का चन्दा अभी तक न भेजा हो वह तुरन्त भेजने की कृपा करें। —मैनेजर

Deekshi Kishan
Gajulpet:- NIZAMABAD.

R.S.

❀ शिव ❀

वर्ष १७	कार्तिक सं० २०२८ वि० अक्टूबर १९७१	तरंग ८

❋ प्रार्थना ❋

नमामि सतगुरुं शान्तं, प्रत्यक्षं सत् रूपिणम् ।
प्रसन्न बदनाक्षं च, सर्व देव समूह मय ॥
अचिन्त्या व्यक्त रूपाय, निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्त जगदाधारं निराधारं च केवलम् ॥
गुरु पादोदकं पानं, गुरोरुच्छिष्ट भोजनम् ।
गुरुर्मूर्त्तिः सदा ध्यानं, गुरुस्तोत्रं सदा जपः ॥
गुकारश्चन्धकारस्तु, रुकारस्तम निरोधकृत् ।
अन्धकारं विनाशित्वा, चिन्तां विनाशित्वा दुहेः ॥
गुकारश्च गुणातीतो, रूपातीतो रुकारकः ॥
गुण रूप विहीनत्वाद्, गुरुरित्यभिधीयते ॥
सर्व श्रुति शिरो रत्नः, नीराजित् पदाम्बुजम् ।
यस्य स्मरण मात्रेण, ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ॥
एवं गुरु पदं श्रेष्ठं, देवानामपि दुर्लभम् ।
ध्रुवं तेषां च सर्वेषाम्, नास्ति तत्त्वं गुरोःपरम् ।
राधास्वामी गुरोर्नाम, परम नामं तथैवच ।
सकर्म्मणा मनसा वाचा, सर्वदाराधयेद् गुरुम् ॥
शुख चैतन्य चिन्मयम् सर्वं, त्रैलोक्य परमं परम् ।
तुर्य्या तुर्य्या तीतं, राधा स्वामी बराननम् ॥

दिवाली की शुभ कामनाओं सहित
परमपिता मालिकसे प्रार्थना है कि आप सब का कल्याण हो।

—देवीचरन मीतल

महर्षि शिवव्रतलालजी महाराज का यह अत्यन्त रोचक तथा आकर्षक उपन्यास तो है ही मगर इसमें माया के रूप का बड़ी व्याख्या के साथ दिग्दर्शन कराया गया है। जो इसे पढ़ेंगे उनको रोचक और प्रिय लगेगा ही मगर साथ ही जो इसके भाव को समझने का प्रयत्न करेंगे उनको हर पृष्ठ पर कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य मिलेगी और अन्त में माया के रूप की समझ आयेगी। आशा है पाठक महोदय इसको अपनायेंगे और लाभ उठायेंगे।

अब 'चमकदार मोती' पृष्ठ ५२ तक इस अंक में दिया जा रहा है। आगे के अंकों में इसे पूरा करेंगे। —देवीचरन मीतल

'शिव' के न मिलने की शिकायत

कुछ लोगों को 'शिव' के न मिलने की शिकायत है। 'शिव' हर एक ग्राहक को जांच करके डाकखाने में दिया जाता है और मैनेजर साहब की निगरानी में ही पत्र दयाल नगर के डाकखाने से भेजा जाता है। मगर आगे चलकर डाक विभाग की गड़बड़ी से पत्र उनको नहीं मिल पाता। उसका इलाज हम यही कर सकते हैं कि उनकी चिट्ठी आने पर दूसरा अंक भेजदें। डाकखाने की गड़वड़ी का हमारे पास कोई इलाज नहीं है। इसलिये यदि किसी को किसी माह का 'शिव' अंक न मिले तो चिट्ठी लिख दिया करें। दूपरा अंक भेज दिया जायेगा। यह चिट्ठियां मैनेजर 'शिव', दयाल नगर के पते पर भेजनी चाहिये।

—देवीचरन मीतल

भूमिका

मोतियों की लड़ियों के सिलसिला का यह तीसरा नाविल है। इस नाविल में माया का विषय समझाया गया है जो अपने ढंग का निराला और विचित्र है।

यह माया क्या है? कोई ऐसा साइन्स जानने वाला और फिलास्फ़र नहीं है जो इस बात का जबाब दे सके। मैं कहता हूँ— नहीं। सवाल क्या है? माया है जबाब क्या है? माया है। पूछने वाला माया का पूत कपूत है और जबाब देने वाला माया का पूत सपूत है। कपूत का शब्द सुनकर कोई मुँह न बनाये। यहाँ कपूत का वह आशय नहीं लिया गया है जो साधारण रीति से सब लोग समझते हैं। कपूत मैं उसको कहता हूँ जिसके अन्दर माया की सारी शक्तियाँ दबी दबाई परदे में पड़ी हुई हैं और उभरने के लिये हाथ पाँव मार रहीं हैं। आदमी टटोल टटोल कर चल रहा है लेकिन माया का रूप दिखलाई नहीं देता। बेचारा क्या करे और क्या न करे! ऐसे अवसर पर माया एक अँधेरा और गहरा गढ़ा है जहाँ हाथ को हाथ नहीं सूझता। लाठी टेक-टेककर चलना पड़ता है। जो शक्तियाँ उभरेंगी, जो दृश्य आँखों के सामने आवेंगे वह क्या होंगे? वह भी तो माया ही के दृश्य और उसी की चमक दमक होंगे। इससे क्या बात साबित होती है? माया अगर अन्धकार है तो माया ही प्रकाश भी है। इधर माया, उधर माया, नीचे माया, ऊपर माया। जो कुछ है माया ही माया है। माया के सिवा कहीं कुछ नहीं है और माया के सिवा किसी को और किसी वस्तु की खोज भी

नहीं है। माया प्रकाश है। माया छाया है। चारों ओर माया ही माया है। यही द्रोपदी का चीर है जिसको दुश्शासन जैसा दुष्ट मनुष्य उतारना चाहता है लेकिन वह परदा उतरने पर नहीं आता और उसे लज्जित होना पड़ता है।

साइन्स जानने वाले क्या कर रहे हैं ? इसी माया की गुत्थियों को सुलझाना चाहते हैं लेकिन क्या वह सुलझती है ? फिलास्फर जिसकी उधेड़ बुन में लगा हुआ है। वह माया के सिवा और क्या है ! लेकिन क्या किसी ने इसका ठीक ठीक पता पाया ?

माया है वस्तु क्या ? कभी जानी न जायगी ।
आंखों से देखकर, कभी मानी न जायगी ॥
ज्ञानी हुये तपी हुये, लाखों यती हुये ।
छाना है किसने इसको ! यह छानी न जायगी ॥
कोई कहे तो क्या कहे ? और कैसे वह कहे ।
समझे न समझे माया, कहानी न जायगी ॥

न किसी ने आज तक छाया को पकड़ा न किसी ने आज तक चांद की चाँदनी को समेटा। यह दोनों माया के सिवा क्या हैं ? इन दोनों का घनापन भी माया ही है। जैसे घोर अन्धकार में कुछ नहीं दिखलाई देता वैसे ही घने प्रकाश में भी आँखें तलमला जाती हैं। फिर मुझ जैसा आदमी उसके रूप और रेखा को कैसे खींचकर दिखा सकता है।

फकीरों की फकीरी क्या हैं ? माया है। अमीरों की अमीरी क्या है ? माया है। संसार में जो कुछ देखते हो सब माया ही के कारबार तो हैं। दानी का दान, मानी का मान, ज्ञानी का ज्ञान और ध्यानी का ध्यान माया ही तो है। भाई ! मेरी चाहे कोई माने या माने मेरी बात को कोई जाने या न जाने मैं तो ईश्वर के ऐश्वर्य को भी माया ही कहता हूँ।

माया विचित्र वस्तु है, शक्ति इसे कहो ।
छल बल कपट है, ईश की भक्ति इसे कहो ।।
माया को झूँठ समझा, तो फिर सच है क्या कहो ।
यह सच भी उसका रूप है, समझो मेरी सुनो ।।
सत है असत है सत्ता, असत्ता है क्या है यह !
जड़ है कि फूल फल है, कि पत्ता है क्या है यह ।।
माया ही के पसारे का, जग में विचार है ।
यह एक है कहीं, तो कहीं तीन चार है ।।
ज्ञानी से जाके पूछो, कि है ज्ञान वस्तु क्या ?
ध्यानी बताये मुझ से, कि है ध्यान वस्तु क्या ?।।
जो कुछ कि है जगत में, यह माया का खेल है ।
माया ही बेल फूल है, माया फुलेल है ॥
ईशत्व है यह ईश की, बुद्धी विचार है ।
सच कह रहे हैं हम, कि यही वार पार है ।।

जो कुछ देखने सुनने समझने बूझने और बिचारने में आता है वह सब माया ही तो है । यही कारण है कि शाक्तिक धर्म वालों ने शक्ति ही को सब कुछ समझा । यह शक्ति माया है । सुनो ! एक मजे की बात सुनाता हूँ—स्वामी शंकराचार्य जी महाराज बड़े ज्ञानी, ध्यानी, वेदान्ती, फ़िलास्फर, अद्वैतवादी और महान विद्वान थे । आप बनारस पहुँचे । घाट पर ठहरे । शक्ति के विरुद्ध कई दिन तक धुआँधार व्याख्यान होता रहा । सारे बनारस में यह बात फैल गई कि स्वामी शंकराचार्य जी शाक्तिक धर्म के विरुद्ध प्रचार कर रहे हैं । कितने लोगों ने शक्ति पूजा को तिलाँजली दे दी । कितने तो शक्ति के नाम सुनकर नाक भौं सिकोड़ने लगे । संयोगवश आप बीमार हो गये, ज्वर ने धर दबाया । शरीर का बल जाता रहा । हाँपते काँपते हुये मणिकर्णिका घाट की एक सीढ़ी पर मन मार कर पड़ रहे । प्यास

ने सताया। हाथ पाँव हिलाने की शक्ति नहीं थी। एक स्त्री गंगा से पानी का घड़ा भरकर ला रही थी। आप ने कहा—"माई! पानी पिलादे।" माई हँसी—"देखने में तो मोटे ताजे और सडा मुस्टंडा हो। पाँव के नीचे गंगा बह रही है। दो सीढ़ियां उतर कर पानी क्यों नहीं पी लेते।" स्वामी जी ने जबाब दिया—"माई क्या करूँ? शक्ति नहीं है।" माई खिलखिला कर हँसी—'वाह रे लेकचरार! रात दिन तू शक्ति का खंडन किया करता है। देख आज शक्ति के बिना तेरी क्या दुर्दशा हो रही है। इतना भी तो तुझ से नहीं होता कि नीचे उतर कर चिल्लू से पानी पी ले। यह शक्ति की महिमा है। यह शक्ति की शक्ति है। जब तू बिना शक्ति के पानी तक नहीं पी सकता तो शक्ति के बिना ध्रुवपद और परम पद तक कैसे पहुँचेगा!" शंकराचार्य जी मन में बहुत ही लज्जित हुये, अपनी भूल मान ली, क्षमा मांगी और शाक्तिक मत के खंडन करने से सदैव के लिये कान पकड़ा। तब माई ने उनको पानी पिलाया और चलते चलते समझा गई—'बेटे! जिसे तू ज्ञान कहता है, जिसे तू ब्रह्म कहता है, जिसे तू परम तत्व बताता है वह शक्ति के सिवा और कुछ नहीं है।' स्वामी जी महाराज कुछ बोल न सके। फिर कोई बात जुबान से नहीं निकली। माई तो चलती बनी। उस दिन से फिर स्वामी शंकराचार्य ने शक्ति के खंडन से सदैव के लिये अपनी जुबान रोकली और फिर कभी खोलने का साहस नहीं हुआ। कहने वाले तो यहाँ तक कहते हैं कि उसी दिन उन्होंने शक्ति की स्तुति में श्लोक लिखे जिसका पाठ आज तक लोग किया करते हैं।

यह शक्ति क्या हैं? माया है। यह योग युक्ति क्या है? माया है। यह कर्म और भक्ति क्या है? माया है। अगर किसी को साहस हो तो वह इसे झूँठा साबित करे और मैं देखूँ वह कितने पानी में है।

नादान कहा करते हैं—माया को छोड़ो, माया जंजाल है। माया

से सम्बन्ध न रक्खो, यह काल का महा जाल है। मेरी समझ में नहीं आता कि यह क्या कह रहे हैं और लोग इनकी बातों को सुनकर क्या नतीजा निकालते हैं ! भाई जो छोड़ोगे वह माया ही है। जो ग्रहण करोगे माया के सिवा उसकी भी कोई दूसरी सूरत नहीं है। ग्रहण और त्याग दोनों ही माया की लपेट की बातें हैं।

यह भक्ति योग युक्ति, योगी ! बतादे क्या है ? ।
किसकी लगन है तुझको ? साधक सुना दे क्या है ? ॥
आसन जमा के बैठा, धूनी रमाई बन में ।
माला गले में पहिनी, तपसी जता दे क्या है ? ॥
नेमी का नेम क्या है ? प्रेमी का प्रेम क्या है ? ।
आनन्द क्षेम क्या है ? कोई बता दे क्या है ? ॥
माया के जाल हैं सब, माया के जाल में सब ।
हम पूछते हैं रह रह, संशय मिटा यह क्या है ? ॥
वन खंडी बन को भागे, योगी गुफा में बैठे ।
बचता है कौन इससे ! हट कर हटा दे क्या है ? ॥

लोग न अपने रूप को पहिचानते हैं न अपनी असलियत की ओर दृष्टि करते हैं। बिना समझे रात और दिन माया को कोसते रहते हैं। जो काम करना हो करो। कुछ दिनों किसी संत या महात्मा के सत्संग में उठो, तब यह रहस्य समझ में आयेगा। अगर ऐसा नहीं करते तो याद रक्खो दुश्मन बनाने से यह माया दुश्मन बन जायेगी और तुम को सौ सौ नाच नचाती रहेगी। फिर चिल्ला उठोगे, बिलबिला उठोगे और हाथ कुछ भी नहीं आयेगा। अगर किसी की शत्रुता का भाव मन में जगह पा गया है तो चारों ओर शत्रु ही शत्रु दिखलाई देंगे। अगर लोगों की भलाई देखकर डाह करते हो तो तुम्हारा दिल भट्टी की तरह दिन रात जलता रहेगा और इसी में

झुलसते रहोगे। चित्त में अशान्ति रहेगी। इसलिये मैं तो यह कहूँगा कि उदार चित्त और विशाल हृदय बनो, तब असलियत की समझ आयेगी। इससे पहिले ज्ञान की कभी आशा न करना, नहीं तो बहुत बड़े भ्रम में फँसोगे। ज्ञान के अधिकारी वही लोग हैं जो दिल के गहरे हैं।

बहुत समझा चुके। अगर समझ गये, तो वाह वाह, न समझे तब भी वाह वाह। इस नावेल में माया का रंग रूप और उसका विचित्र नाच दिखलाया गया है। इसे पढ़कर तुम समझ जाओगे कि माया क्या वस्तु है और वह किस तरह माया वादियों या माया प्रतिवादियों को सौ सौ नाच नचाया करती है।

शिव
राधास्वामी धाम
(वाराणसी)

चमकदार मोती

कथारम्भ

बनारस हिन्दुओं का सब से बड़ा तीर्थ स्थान है। और तीर्थों में तो लोग स्नान ध्यान और नाना प्रकार के धार्मिक भाव चित्त में रखकर जाते हैं पर यहाँ हिन्दुस्तान के अनेक प्रान्त के हिन्दू कारो-मंडल और मलाबार से लेकर अमरनाथ काशमीर की चोटी पर रहने वाले तक मरने के लिये आते हैं। और जगहों के तीर्थ सेवन से काशी का मरना अति उत्तम समझा जाता है। सर्व साधारण का विश्वास है कि जो काशी में मरता है मुक्त पदवी को प्राप्त होता है। यह विचार और भाव हिन्दू बच्चों तक के हृदयों में भली भाँति बैठ गया है। वह बूढ़े अपने आपको बहुत ही भाग्यवान समझते हैं जिनकी मृत्यु पवित्र काशी में होती है।

परमसंत कबीर साहब के जब शरीर त्यागने का समय आया, लोगों ने कहा, "आप भाग्यवान हैं। जीवन पर्यन्त देश देशान्तरों में बिचरते रहे, अन्त समय बनारस में प्राण त्याग रहे हैं।" कबीर साहब हँसे, 'जो कबिरा काशी मरे तो रामे कौन निहोरा !' अर्थात् जब कबीर साहब काशी जी में मरते हैं तो फिर राम का क्या एहसान है ! यह कहकर उठ खड़े हुये, मगहर में आये जहाँ मरने से गदहे का चोला मिलता है और वहाँ ही गुप्त हुये।

बनारस वास्तव में विचित्र शहर है। गंगा हरिद्वार से दक्षिण की ओर बहते हुये इलाहाबाद (प्रयाग) में आकर पूर्व की ओर बहने लगी। बनारस पहुँच कर उसे अपनी मातृभूमि उत्तराखंड (हिमालय) की याद आई और उत्तर की ओर पलटी। इसी लिये यहाँ उसका नाम उत्तरवाहिनी हो गया। इस जगह यह धनुषाकार बही हुई है और बनारस इसी जगह बसा हुआ है। उत्तरवाहिनी और धनुषाकार होने के कारण वह और भी पवित्र समझी जाने लगी। बनारस की महिमा इसीलिये बहुत बड़ी समझी जाने लगी।

बनारस संसार का जगत् विख्यात शहर है। साथ ही बहुत ही सुन्दर और रमणीक भी है। पूर्व की ओर गंगा के किनारे के ऊँचे ऊँचे घाट उसकी सुन्दरता को और भी भड़का देते हैं। इन घाटों पर कहीं कहीं बहुत ऊँचे कोठे और मीनार बने हुये हैं जो इसके सौन्दर्य को विशेष रूप से बढ़ा देते है।

हिन्दू धर्म की जीती जागती मूर्ति को यदि कोई देखना चाहे तो इसके लिये बनारस से बढ़कर और कोई जगह नहीं है। अभी तीन भी नहीं बजे होंगे अँधेरी और उजाली रात, गर्मी हो या सरदी, विश्वासी हिन्दू नंगे बदन, कमर से लँगोटी बाँधे, कन्धे पर अँगोछा डाले, बगल में धोती दबाये, हाथ में पूजा के फूल या सामग्री लिये हुये नंगे पाँव, 'हर हर' 'हर हर' 'शिव शिव शिव शिव' 'गंगे गंगे गंगे गंगे' कहते हुए दरिया की ओर जाते और शहर की पेचदार तंग गलियों से निकलते हुए दिखाई देंगे। मन्दिरों के भीतर टिम-टिमाते चिरागों की रोशनी के साथ घंटा शंख बज रहे हैं। शिव के भक्तों के मुख से 'महिम्न स्तोत्र' या स्तुति के श्लोक निकल रहे हैं। जिन्हें संस्कृत भाषा नहीं आती वे वही काम हिन्दी में लेते है जैसे—

(१) गङ्गा गङ्गा जो नर कहे।
नङ्गा भूखा कभी न रहे॥

(२) चना चबेना गङ्ग जल, जो पुरवें कर्तार।

काशी कबहुँ न छोड़िये, विश्वनाथ दरबार ॥

विश्वनाथ शिव भगवान का नाम है। यह काशी के राजा कहलाते हैं। इनके नाम के एक नहीं कम से कम सवा लाख छोटे मोटे मन्दिर वहाँ बने हुये हैं। जो धनवान यात्री वहाँ आता है कोई न कोई मन्दिर बनवा जाता है। पहिले ऐसा ही रिवाज था। अब अँग्रेजी सभ्यता ने इस विश्वास को बहुत कुछ धक्का पहुँचाया है। तब भी बनारस बनारस ही है। वहां नये मन्दिर बनते और पुराने आप ही आप गिरते रहते हैं। बनारस शिव जी के त्रिशूल पर बसा हुआ है, ऐसा हिन्दुओं का भाव है और काशी तीन लोक से न्यारी मानी जाती है। संसार में सब कुछ नाशवान है परन्तु यह नाश को प्राप्त नहीं होती क्योंकि यह आप महाकाल का नगर है।

इसी बनारस के चेतगज मुहल्ले में दो हिन्दू घराने रहते थे— एक ब्राह्मण दूसरा राजपूत। ब्राह्मण साधारण अवस्था का मनुष्य था परन्तु राजपूत बड़ा ही धनवान था। दोनों के घर पास ही पास थे। इन दोनों में पड़ौसी का सम्बन्ध था। राजपूत या और ऊँची जाती के हिन्दू ब्राह्मणों को अधिक मानते हैं। कम से कम बनारस की यही दशा है। ब्राह्मण के घर को राजपूत के घर से नित्य ही कुछ न कुछ दान दक्षिणा मिला करती थी। इसीलिये इनमें और भी घना सम्बन्ध और मेल जोल था। ब्राह्मण घर के स्त्री पुरुष राजपूत घर में बराबर आया जाया करते थे।

दोनों घरों में दो लड़कियां थीं। संयोग वश दोनों का नाम माया रक्खा गया था। राजपूतिनी माया काली थी। कुरूपा तो वह थी नहीं परन्तु रूपवती भी नहीं कही जा सकती थी। इसके विरुद्ध ब्राह्मणी माया महा सुन्दरी थी। जो कोई देखता था दाँतों तले आश्चर्य की उँगली दबाता था। इन दोनों लड़कियों में गहरा प्रेम था। रहना सहना, मन्दिरों में जाना, पढ़ना लिखना, खेलना कूदना, सीना पिरोना साथ ही साथ हुआ करता था। वह एक साथ बैठकर

खाती पीती नहीं थीं क्योंकि बनारस में एक जाति का हिन्दू दूसरी जाति के हिन्दू का छुआ हुआ खाना नहीं खाता। और तो पश्चिमी सभ्यता ने इस छूत छात के रस्म को कुछ न कुछ धक्का पहुँचा दिया परन्तु बनारस पहिले की तरह अब भी इस पुरानी रिवाज पर अकड़ा हुआ है। रस्सी जल गई परन्तु ऐंठन ज्यो की त्यों बनी हुई है। खाने पीने के रस्म को छोड़ कर बाकी और सब बातों में दोनों लड़कियाँ आपस में मिली जुली रहती थीं। उनमें घना प्रेम था और हमजोली होने के कारण यह सम्बन्ध और भी दृढ़ हो गया था।

दोनों बारह वर्ष की हुई। बचपन के विवाह का रिवाज अब तक यहाँ है। माता पिता लड़कियों को अपने सर का बोझ समझते हैं और जब तक यह बोझ नहीं उतर जाता इन्हें चैन नहीं आता। दोनों घरों को इनके विवाहने की चिन्ता थी। नाई और पुरोहित जगह जगह वर की खोज में चक्कर लगाते थे। अन्त में देहली शहर में इन दोनों का विवाह ठीक हो गया। यह भी कुछ संयोग की बात थी। पूर्व के ब्राह्मण और क्षत्री अपनी कन्याओं का विवाह इतनी दूर नहीं करते।

पति के घर जाने से पहिले एक दिन यह दोनों एक जगह बैठी हुई थीं। राजपूतिनी माया सीधी सादी थी। ब्राह्मणी माया इसके एक दम विरुद्ध थी। इसमें समझ बूझ सोच विचार अधिक था।

ब्राह्मणी माया बोली, 'बहिन ! लड़की माँ बाप के घर में अमानत समझी जाती है। अब हम दोनों को बनारस छोड़ना पड़ेगा। विवाह हुआ नहीं कि हमारा ग्राहक आयेगा और बलात्कार अपने साथ ले जायेगा।'

राजपूतिनी माया ने कहा, 'सदैव से ऐसा ही होता आया है। कोई लड़की अपने माँ बाप के घर नहीं रही। इसलिये हम दोनों को भी जाना होगा।'

ब्राह्मणी माया—'जाना तो अवश्य है परन्तु यह कुशल है कि

हम दोनों का विवाह देहली में हो रहा है। कभी न कभी तो मिलन जुलना होता रहेगा।'

राजपूतिनी माया—'इसमें सन्देह ही क्या है ?'

'पता नहीं तेरा मेरे घर से कितनी दूर पर होगा ! यह तो सुना है कि मुहल्ले अलग-अलग हैं परन्तु इससे होता क्या है ! तू कभी कभी आती रहेगी।'

ब्राह्मणी माया—'कौन जाने पति की क्या हैसियत है ! देहली बड़ा शहर है। यदि वह भी मेरे बाप की तरह कगाल है तो घर के काम काज से छुट्टी भी मिलेगी या नहीं।'

राजपूतिनी माया—'इसकी चिन्ता न कर। मैंने सुना है कि जिस घर में मेरा विवाह हो रहा है वह मेरे बाप से भी अधिक धनवान है। जहाँ तक मुझसे हो सकेगा मैं हर तरह तेरी सहायता करती रहूँगी और कभी बुला लिया करूँगी।'

ब्राह्मणी माया—'यह तेरी दया है। मैं भी यही चाहती हूँ कि हम लोगों में जो बहिन का नाता हो गया है वह दिनों दिन दृढ़ ही होता जाये और इसका प्रभाव हमारी सन्तान तक बराबर रहे परन्तु बहिन ! संसार में किसी बात का ठिकाना नहीं। दम के दम में क्या हो जाये, किसे पता है ! देहली के रहने वाले पूर्वियों की भाषा को भद्दी बताते हैं और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। हमारे साथ क्या व्यवहार किया जायेगा इसे कौन कह सकता है !'

राजपूतिनी माया—'अब तो जो कुछ सर पर पड़ेगी उसे सहना ही पड़ेगा,' और उसकी आंखों में आँसू भर आये। ब्राह्मणी भी रोने लगी। स्त्रियों के लिये यह साधारण बात है।

ब्राह्मणी माया ने आंचल से आँसू पोंछकर मुसकराती हुई पूछा, 'यह तो बता कि पति के घर में तू किस तरह रहेगी ?'

राजपूतिनी माया—'जैसे बड़े घरों में बहू बेटियां रहती है। सास ससुर की सेवा, पति का आज्ञा पालन सब के साथ प्रेम भाव

यह मेरा जीवन व्यवहार होगा। और तू कैसे रहेगी ?'

ब्राह्मणी माया—'मैं और तरह की माया हूँ। तू और तरह की माया है। सास ससुर को तो मैं अपनी एड़ी चोटी पर न्यौछावर करूँगी। मैं लौंडी बनकर तो नहीं जाऊँगी ! इनको अपने वश में रक्खूँगी। पति मेरे आधीन रहेगा। मेरी उँगलियों के इशारे पर काम करेगा। जहां तक मैंने सुन रक्खा है वह भी गरीब घराना है। परन्तु क्या हुआ ! स्त्री को शास्त्र शक्ति कहते है। मैं अपने पति को ऐसे काम काज में लगाऊँगी कि वह झटपट धनवान हो जाये और घर में निर्धनता न रहे। इससे बढ़कर संसार में कोई भी दुख नहीं है। जाति अपमान से बढ़कर और कोई भी अपमान नहीं होता। निर्धन और मान रहित मनुष्य का मरना जीना बराबर है।'

राजपूतिनी माया—'तू बड़ी बुद्धिमान और समझ बूझ वाली है। जो न करे वह थोड़ा है। मैं साधारण बुद्धि की स्त्री हूँ और मेरा जीवन साधारण होगा। मेरे मन में उमंग और उत्साह नहीं है। जो कुछ होगा देखा जायेगा। अभी से क्या कहूँ ! परन्तु बहिन ! पति के घर जाकर मुझे भूल न जाना। कभी कभी मिलती रहना। इससे अधिक मुझे और कोई इच्छा नहीं है।'

ब्राह्मणी माया—'बाबली ! इसकी क्या चिन्ता है ? मैं तुझ से मिलूँगी और हजार बार मिलूँगी। जो नाता हो गया है उसे कभी टूटने न दूँगी।'

पहिला भाग

पहिला अध्याय

राजपूतिनी माया

[नाई पुरोहित ने विवाह करा दिया।]

देहली यों तो हिन्दुस्तान का बहुत पुराना शहर है और प्रतिष्ठानपूर (झूँसी-इलाहाबाद) के नष्ट होने पर चन्द्र वंशी राजपूतों की राजधानी की हैसियत में चला आता है परन्तु इसने काल भगवान के बड़े परिवर्तन देखे हैं। यहां ही कौरवों और पाण्डवों की लड़ाई हुई थी। इसी जगह से हिन्दुओं के राज्य की जड़ उखड़ गई और मुसलमान आ धमके। इनके कई खानदानों ने एक दूसरे के पीछे अपना सिक्का जमाया। बाबर ने इसी जगह मुगलिया राज्य की नींव डाली जो अन्त में मिटते मिटते मरहठों के हाथ आई। इस घराने का अन्तिम बादशाह शाहआलम उनसे पेन्शन पाने लगा। मरहठों को पानीपत के मैदान में अहमद शाह दुर्रानी ने बुरी तरह से हराया। धीरे-धीरे यह अंग्रेजों के हाथ आ गया। अंग्रेजी राज्य की राजधानी पहिले कलकत्ते में थी परन्तु राजनैतिक दृष्टि से देहली ही को राजधानी बनाई गई।

देहली को क्या कहा जाये? या तो वह क़ब्रिस्तान की हैसियत रखता है जिसमें बादशाहों की हड्डियां गढ़ती रही हैं और ऊँचे-ऊँचे रौजे और मीनार चारों ओर इस बात को स्मरण कराते रहते हैं या वह श्मशान भूमि का हवन कुण्ड है जिसमें राजाओं महाराजाओं के शिरों की आहुति दी जाती रही है। कई बार बनी बिगड़ी, बसी उजड़ी और अब भी वही सिलसिला बराबर चला आता है। जो

बादशाह आता है पुरानी देहली को छोड़ कर अपनी नई देहली बसाता है।

अंग्रेजों ने क्यों देहली को राजधानी बनाई ? यह प्रश्न है जिसका उत्तर बहुत कम लोग जानते हैं। कारण यह है कि देहली राजस्थान के बहुत ही समीप है। यहाँ जो राज्य करेगा वह राजपूताना पर अपना सिक्का भली भाँति बिठा सकेगा। मुसलमान बादशाहों ने भी ऐसा ही समझ रक्खा था और अब अंग्रेज अपनी बारी पर उसी का अनुकरण कर रहे हैं। इतिहास में ऐसा सदैव से होता चला आया है। सृष्टि में परिवर्तन का नियम पल-पल और क्षण-क्षण काम करता रहता है।

चन्द्रवंशियों की राजधानी और राजस्थान का केन्द्र होते हुये भी देहली में राजपूत सरदारों की कोई अच्छी आबादी नहीं है। यहां कोई भी ऐसा सरदार दिखलाई नहीं देता जिसे हिन्दू सोसाइटी अपना जातीय लीडर समझती हो। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। मुसलमान और हिन्दू सभी बसते हैं परन्तु पुराने शाही नस्ल (राजकुल) के लोग कहीं भी देखने में नहीं आते। देहली वास्तव में महाजनों, दुकानदारों और सौदागरों का शहर है। सब मर मिटे। तैमूर लंग के समय से लेकर नादिरशाह और सन् १८५७ के बलवे तक देहली में जो जो परिवर्तन होते रहे हैं उनसे इतिहास भरे पड़े हैं। सरदारों, नबाबों और बादशाहों के खानदानों का पता तक नहीं है परन्तु कला कौशल की दृष्टि से देहली अब तक वैसी ही आबाद है जैसी कि पहिले थी।

जिस समय की हम बातचीत कह रहे हैं उस समय संयोग वश एक राजपुत घराना कहीं से आकर देहली में आबाद हो गया था। मन चला होना राजपूती बांकपन का पहिला चिन्ह है। वह यहाँ आया, फूला फला, कई गाँव उसके हाथ में आये। धनद्रव्य और मान प्रतिष्ठा की दृष्टि से उसने अंग्रेजों के दिलों में जगह पा ली। वह

राजपूत सरदार न केवल लेजिस्लेटिव काउन्सिल का मेम्बर होगा किन्तु धीरे धीरे लार्ड मार्ले की संशोधित शासन प्रणाली के नियमानुसार उसे प्रेसिडेन्ट होने का सौभाग्य प्राप्त हो गया।

राजपूतिनी माया का विवाह इसी घराने में हुआ। लड़का पढ़ा लिखा और रूपवान भी था परन्तु पश्चिमी सभ्यता उसकी घुट्टी में पड़ी हुई थी। उसका नाम ब्रह्मासिंह था। माया रूप रंग और रहन सहन की दृष्टि से उससे एक दम भिन्न थी। जो अन्तर कि बनारस और देहली के रहन सहन चाल ढाल और बोलचाल में है वही अन्तर इन दोनों में भी था। एक बनारसी थी दूसरा देहलवी था। बस इसी एक बात से पढ़ने वाले समझलें कि स्त्री पुरुष में कैसा मेल था।

परदे का रिवाज दोनों ही जगह है। यदि ब्रह्मासिंह माया को देख लिये होता तो वह कभी उसे पसन्द न करता परन्तु घूँघट वाली कन्या को वर कैसे देख सकता था! पूर्वी सभ्यता बाधक थी।

विवाह हो गया। बारात बनारस गई। धूमधाम से विवाह समाप्त हुआ। हजारों और लाखों की जायदाद दहेज में मिली। ब्रह्मासिंह का बाप रुपये का भूखा था। उसे लड़के के भाव का ध्यान नहीं था। इसने तो यह समझ रक्खा था कि लड़का भी उसी के स्वभाव का होगा और धन पाकर प्रसन्न हो जायेगा परन्तु बात उल्टी हो गई।

दोनों रात के समय एक दूसरे से मिले। माया ने ब्रह्मा को और ब्रह्मा ने माया को देखा। उसे माया से घृणा हुई और यह उस पर तन मन से लट्टू हो गई। बेचारी पहिली ही रात में पति की आंखें देखकर तलमला उठी और पाँव पड़ी। उसने उसे पांव से ठोकर मारकर गिरा दिया। करती तो क्या करती! और कहती तो क्या कहती! अलल्हड़ लड़की! माँ बाप की गोद छोड़कर पति के घर आई थी। पति ने उसे पहिली ही रात घृणा की दृष्टि से देखा और

नीचा दिखाया। कुशल यह हुआ कि और किसी ने इस अपमान के दृश्य को नहीं देखा।

माया हाथ बांधे हुये उठी और उसके सामने लाट के पास खड़ी हो गई।

ब्रह्मा ने कहा—'चुड़ैल ! तू कैसे यहाँ मेरे पास आ गई ? मेरा तेरा एक साथ रहना असम्भव है। मैं तुझे पसन्द नहीं करता। जा आंखों के सामने से दूर हो और फिर मुझे अपनी काली कलूटी सूरत कभी न दिखा।'

पहिला दिन और यह सलूक ! काटो तो लुहू नहीं बदन में। मुख पीला पड़ गया। ब्रह्मा ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

माया बोली—'प्राणनाथ ! बताइये मेरा क्या दोष है ? मैं स्वयं आप के पास नहीं आई। आप बनारस जाकर मुझे ले आये। मेरा हाथ पकड़ा। मेरे जीवन और मान रक्षा का प्रण किया। आप सुन्दर सलौने हैं मैं काली कलूटी हूँ परन्तु चिराग के तले अँधेरा रहता है ? आप आज्ञा दीजिये मैं उसी के अनुमार अपना जीवन व्यतीत करूँ।

क्रोधी मनुष्य का हृदय सुगमता से नहीं पसीजता। और समय यह सम्भव भी है परन्तु क्रोध के समय इसकी सम्भावना नहीं हो सकती।

ब्रह्मासिंह ने मुँह बनाकर उत्तर दिया, 'मैं तेरे साथ विवाह करने वाला नहीं हूँ। यह प्रश्न तू अपने मां बाप या मेरे माता पिता से कह सकती है। मैं तुझे कोई उत्तर नहीं दे सकता। हां इतना कह देता हूं कि मेरा तेरा मेल असम्भव है।'

माया बोली—'मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन न करूँगी। क्या यह भी सम्भव नहीं है कि आप दूसरा विवाह करलें और मुझे अपनी लौंडी बनाकर रखलें ? मैं रात दिन सेवा किया करूँगी और सेवा के अतिरिक्त और किसी प्रकार की प्रार्थना जीते जी न करूँगी।

ब्रह्मा ने कहा—'मैं यह भी नहीं चाहता। मैं तेरी सूरत देखना नहीं चाहता, सेवा लेना तो दूर रहा। बस कुशल इसी में है कि मेरा तेरा साथ कभी न हो।'

माया बोली—'बुरी हूँ या भली, अब तो मैं आप ही की हूँ। साथ कई तरह का होता है। यदि आप शरीर से अलग करेंगे तो मन से दूर तो कदापि न कर सकेंगे। क्या आप के हृदय में यह ध्यान न रहेगा कि आप ने माया के साथ विवाह किया है? यह तो न आप ही भूल सकते हैं न मैं ही भूल सकती हूँ। इस जन्म में तो यह साथ किसी न किसी रूप में बराबर बना रहेगा। शारीरक न सही मानसिक सही। अब तो मैं आप की हो गई। न मैं आप से अलग हो सकती हूँ न आप मुझसे विलग रह सकते हैं।'

ब्रह्मासिंह ने माया को गहिरी दृष्टि से देखा—'जान पड़ता है तू जितनी ही बदसूरत बनाई गई है उतनी ही कठहुज्जती और बकवादी भी है। ऐसी दशा में मेरा तेरा साथ और भी असम्भव है।'

माया ने हाथ बांधकर कहा—'भगवन्! यह मेरा दुर्भाग्य है जो पहिले ही दिन आपके सामने मुझे मुँह खोलना पड़ा वरन् यह आप की माया बहुत ही कम बोलने वाली है। आप मेरे प्राणनाथ हैं। शरीर और मन का सारा कारबार प्राण के सहारे होता रहता है। आप मुझे अपने पवित्र चरणों से दूर रखना चाहते है। यदि कोई मनुष्य प्राण को अलग होते हुये देखे तो फिर शरीर और मन में घबराहट क्यों न आये! इससे बढ़कर और क्या दुख हो सकता है!'

ब्रह्मासिंह बोला, 'तू तर्क शास्त्र भी बहुत अच्छा जानती है। बनारस के पंडितों की तुझ पर छाया पड़ी होगी।'

माया ने कुछ देर चुप रहकर फिर साहस से काम लिया, 'आप का कहना सच होगा। मेरे लिये जो आज्ञा हो मैं उसके पालन करने के लिये तैय्यार हूँ। आप की आज्ञा पालन करना ही मेरा परम धर्म है और इसी में मेरा कल्याण भी है।'

ब्रह्मासिंह ने कहा, 'तू मुझ से अलग रह।'

माया बोली, 'यह असम्भव है। जिसकी माया उसके साथ। इसके अतिरिक्त और कोई आज्ञा दीजिये।'

ब्रह्मासिंह ने कहा, 'यही आज्ञा है। इसके अतिरिक्त और कोई आज्ञा नहीं है। यदि तू फिर मुँह खोलेगी तो इसका परिणाम बुरा होगा और तुझे जीवन पर्यन्त पछताना पड़ेगा।'

माया ने चुपकी साध ली, दोनों हाथ बाँधकर पति को नमस्कार किया और कमरे से चली आई। उसने अपनी सास से सारा दुखड़ा रो रोकर सुनाया। वह अपने लड़के के स्वभाव को भली भाँति जानती थी। उसने बहू को तसल्ली दी और छाती से चिपटाकर बोली, बेटी! घबरा मत। गम्भीरता हिन्दू स्त्रियों का भूषण है। तू जो कुछ कहती है उसका ज्ञान मुझे पहिले ही से था। मैं जानती थी कि ऐसा होने वाला था। इसमें मेरा या बेटे का दोष नहीं है। यह सारा दोष तेरे ससुर का है। उसने मेरी नहीं सुनी और तेरे साथ मुझे भी दुखी होना पड़ा। अच्छा! जो होने को था हो गया। आगे जो होने वाला है वह भी होकर रहेगा परन्तु तुझे निराश और दुखी नहीं होना चाहिये। तूने अपनी मां की गोद छोड़ी, मैं तेरी दूसरी माँ हूँ। अपना सर मेरी गोद में रख दे। लड़का कभी न कभी राह पर आ जायेगा और तेरा जीवन सुख से व्यतीत होगा। हाँ! इस समय धैर्य से काम लेना चाहिये।'

माया ने अपना सर सास के पाँव पर रख दिया और फूट-फूटकर रोई। उसने प्रेम के साथ उसे अपनी गोद से चिमटा लिया। वहू की दशा देखकर वह भी अपने आँसुओं को न रोक सकी। उस दिन से सास और बहू इस तरह रहने लगीं जैसे माँ बेटी रहती है। दोनों एक दम शान्त रहने लगीं। किसी को कानों कान पता तक न लगा कि ब्रह्मा और माया में अनबन है। ब्रह्मा घर में आता जाता रहता था। माया उसकी आंख बचाकर रहती थी परन्तु दोनों ही दुखी

थे। न इसे चैन ! न उसे शान्ति ! न इसे उससे सम्बन्ध ! न उ
इससे काम ! यह दशा कब तक रह सकती है ! मन के दर्पण में मै
आने दो, फिर वह दर्पण दर्पण न रहेगा। इस पर नित्य मैल
जमता जायेगा। थोड़े ही दिनों में वह एक दम अन्धा और धुँधला
हो जायेगा।

दूसरा अध्याय

माया के सास ससुर

'माया बेटी !'

'हां ! पिता जी ! क्या हुक्म है ?'

और सास के हाथ में हाथ दिये हुए माया ससुर के पास आई।

ससुर ने कहा, 'बेटी। तू बड़ी दुखी है। और इस दुख का कारण मेरी ही भूल है।'

माया बोली, 'पिता जी ! आपकी कोई भूल नहीं है। माँ बाप जन्म के देने वाले हैं, कर्म के देने वाले नहीं हैं। माँ बाप जन्म के कारण तो कहे जा सकते है परन्तु कर्म के कारण वह नहीं हो सकते। मनुष्य अपना कर्म अपने साथ लाता है और कुछ उसने पहिले जन्मों में कर रक्खा है उसी का फल भोगता है। इसमें इसके अतिरिक्त और किसी का भी दोष नहीं है। जो ऐसा नहीं समझता है भूल में पड़ा हुआ है।'

ससुर—'यह समझ बूझ ! यह विवेक ! और मनुष्य की आंखें इस पर भी न खुलें ! बड़ा ही आश्चर्य है !'

सास—'आश्चर्य ही नहीं किन्तु अन्धेर है। मेरी बहू अमूल्य मोती है परन्तु जब जौहरी उसका ग्राहक न हो तो किसी को क्या कहा जाये ?'

बहू—'माता जी ! मैं इस प्रशंसा के योग्य नहीं हूँ। आप मेरे बहाने अपनी प्रशंसा आप करती हैं। अभागी माया काशी छोड़कर देहली आई। अपमान और दुख के समय यदि और कोई होता तो इस अभागी को पाँवों से ठोकर मार कर दूर भगा देता। यह आप ही लोगों का हृदय है कि दुखी को सहारा दिये हुए हैं। संसार में यह अपने ढंग की पहिली ही घटना होगी कि सास ससुर को अपने बेटे का ध्यान नहीं है और बहू को अपनी नाक का बाल बना रक्खा है। माया इस विषय में बहुत बड़ी भाग्यवान है। यह भी दिन कटे जा रहे हैं कट जायेंगे।'

ससुर—'धन्य है बेटी ! तू धन्य है ! तू अमूल्य रत्न है। जब से घर में आई है चारों ओर उजाला ही उजाला है। केवल एक कोने में अँधेरा है। इस घर में बीसों नौकर चाकर थे। अब भी हैं परन्तु जीवन का सुख जो तुझ से मिला है कभी भी प्राप्त नहीं हुआ था। तू स्त्री है या आकाश की देवी है ! हम दोनों को अपनी सेवा से मुट्ठी में रख रक्खा है। उस कुपात्र को क्या कहा जाये जो बाहरी सुन्दरता पर मरता है और सच्चे सौन्दर्य को नहीं देखता। वह सचमुच हृदय चक्षु का अन्धा होगा !'

बहू—(आंखों में आंसू भर कर)—'पिता जी ! ऐसी बातें मुँह से न निकालिये। यह सब समय समय की बात है। समय आता है जाता है। सदैव यह भी एक रस नहीं रहता। माताजी ने मुझे धैर्य धारण करने का उपदेश दिया। मैं उस उपदेश के अनुसार चल रही हूँ। आप भी सावधानी से काम लें।'

ससुर—वाह ! वाह !! धन्य है तेरी समझ बूझ ! क्यों जी ब्रह्मा की माँ ! तुम ने कुछ और भी सुना है। ब्रह्मा आज कल क्या करता है ?'

सास—'नादान कमलावती के पीछे पड़ा रहता है। मुझे पल पल का पता मिलता रहता है। मैंने सुना है कि वह उसे चाहता है और

अपने मित्रों से कहा करता है कि कमलावती उसी के योग्य है।'

ससुर—'मैं इन सब बातों को जानता हूँ। बेटी माया! तुम बुरा न मानना। तुम समझ बूझ वाली वाली हो। इसलिये तुम से कोई बात छुपाना नहीं चाहता। तेरे कोमल हृदय को चोट पहुँचने का भय होता तो हम दोनों को तेरे सामने मुँह खोलने का साहस न होता। दुख का पहाड़ सर पर आ गिरा है। हम तीनों मिलकर उसे झेलेंगे। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।'

बहू—'मेरे हृदय को ठेस न लगेगी। मैं आप इसे जानती हूँ। यहाँ मेरी एक ब्राह्मणी सहेली है। उसका भी नाम माया है। वह मुझे सारी बातें सुना जाया करती है।'

सास—'कमलावती शिमले के किसी राजा की लड़की है। विधवा हो गई है। वह यहाँ दिल बहलाव के लिये आई है। पढ़ी लिखी और आज कल की सभ्यता से संयुक्त है। पता नहीं कि ब्रह्मा उसके पास कैसे पहुँचा! क्योंकि वह इतनी मिलनसार भी नहीं है और उसके यहां कोई अन्य पुरुष जाने तक नहीं पाता।'

ससुर—तुमने जो कुछ सुना है सब सच है। देहली का एक बाबू उसके यहाँ क्लर्क है जो मेरे बेटे का मित्र है। उसी के द्वारा आने जाने का सिलसिला निकला। इसके अतिरिक्त और कोई बात नहीं है। वहाँ उसकी दाल नहीं गल सकती परन्तु यह अपने उधेड़ बुन में मस्त है। इसे आगे पीछे किसी बात की समझ नहीं है।'

सास—'क्या तुम आप उस लड़की को जानते हो?'

ससुर—'नहीं, इसके बाप से मेरी जान पहचान थी परन्तु साधारण और केवल नाम मात्र।'

सास—फिर भी पुराने रस्म रिवाज के अनुसार यदि चाहो तो बहुत कुछ रोक थाम कर सकते हो।'

ससुर—हँसा, 'बाबली। ऐसी बाते नाजुक होती हैं। क्या मजाल कोई मुँह तक तो खोल सके। मैं कुछ नहीं कर सकता और न कुछ

करूँगा। यदि माया चाहे तो यह निस्सन्देह कर सकती है और मैं कभी रुकावट न डालूँगा।'

सास—'वह कौनसी युक्ति है ? मैं भी सुनूँ।'

ससुर—'लड़की के आगे मेरा मुँह न खुलेगा। जब तू अकेली होगी तब मैं कह सुनाऊँगा। केवल इतना इशारा दे सकता हूँ कि जो ब्राह्मणी लड़को बहू के पास आया जाया करती है बहू उसे काम की स्त्री बना सकती है। स्त्रियाँ सब कुछ कर करा सकती हैं। जहां पुरुषों का बस नहीं चलता वहां स्त्रियां ही काम कर डालती हैं।'

सास—'अच्छा। एकान्त में तुम से सुनूँगी। इस समय बहू को तुमने क्यों बुलाया है ?'

ससुर—'जिस अभिप्राय से मैंने उसे बुलाया है वह तू पहिले ही से जानती है। मैं अपनी सारी जायदाद, माल असबाब धन द्रव्य माया के नाम वसीयत करने वाला हूँ। सम्भव है इस वसीयत को सुनकर लड़का राह पर आ जाये। माया का विवाह हुये आज कई वर्ष हो गये। वह अपनी हठ पर अड़ा है। घर में आता है परन्तु अलग अलग रहता है। यह कुशल है कि कमलावती की घटना के अतिरिक्त और कोई दोष इसके नहीं सुने जाते। यह बात भी कुछ यों ही है जिसका न सर न पैर ! यदि मैं वसीयत कर दूँगा तो वह अवश्य चौकन्ना हो जायेगा और इसकी प्रसन्नता का यत्न करेगा। इससे एक पन्थ दो काज होगा।'

सास—'परन्तु आपको क्या अधिकार है कि लड़के को मौरूसी जायदाद से महरूम कर दें। कानून भी इसकी आज्ञा नहीं देता।'

ससुर—'मेरी जायदाद मौरूसी नहीं हैं। मेरी अपनी पैदा की हुई है। इसमें कानून बाधक नहीं हो सकता। वह चाहे जिसके नाम वसीयत को जा सकती है।'

सास—'हां ! कानून ऐसी आज्ञा देता है ! बड़े आश्चर्य की बात है परन्तु बाप की जायदाद से लड़के को अलग करना अन्याय होगा। क्या आप ऐसा नहीं समझते ?'

ससुर—'नही, लड़कों पर सख्ती करना मां बाप का धर्म नहीं है। बाप कभी लड़के के साथ ऐसा सलूक नहीं करता। ब्रह्मा मेरा इकलौता और अकेला लड़का है। इसके अतिरिक्त इस घर का मालिक और कोई नहीं है। तुम इस विचार को भूल कर भी दिल में जगह मत देना कि मैं जीते जी उस पर सख्ती करूँगा या कर सकूँगा। यह केवल उसके सुधार का यत्न है।'

सास—'एक विवाह के विषय में तो आप धोखा खा गये। कौन जाने यह दूसरी युक्ति भी उपयोगी होगी या नहीं!'

ससुर—'मनुष्य जो काम भलाई के भाव से करता है चाहे उसका परिणाम जैसा हो उससे दुख नहीं पहुँचता। लड़का अभी अलल्हड़ और कम उम्र है। संसार के ठोकर खाकर राह पर आ जायेगा। अनुभव से बढ़कर और कोई सिखाने वाला नहीं है। हाँ इस गुरु की दक्षिणा बहुत देनी पड़ती है।'

बहू—'परन्तु पिता जी! मैं स्वार्थिन नहीं हूँ न आपका माल लेकर प्रसन्न हूंगी। माया को आप माया क्यों देते हैं? माया तो वह स्वयं है। जिसके सहारे यह माया रहती है उसको आप राह पर लाइये।'

ससुर—हँसा, 'माया! तू वेदान्तियों की तरह इशारों में बातें करती है। माया ब्रह्म के सहारे रहती है। इसका सहारा कोई छीन कैसे सकता है? बिना माया की सहायता के आज तक कोई भी ब्रह्म तक न पहुँच सका। यह अति आवश्यक है। सत्ता न होती तो सत की समझ किसे आती! न कभी ऐसा हुआ, न आगे होने की आशा है। धैर्य धर! मेरी वसीयत माया और ब्रह्मा के मिलाप का ढग निकालेगी। यदि आज ऐसा नहीं होता तो कुछ दिनों पीछे इसका परिणाम बहुत ही अच्छा होगा। ब्रह्मा बहका बहका फिर रहा है। मैं उसके मुँह पर नहीं आता और न आना चाहता हूँ। तेरी सास को भी यह बात समझा दी गई है और तू तो आप मुझ से कहीं बुद्धिमान है। तुझे समझाना बुझाना व्यर्थ और निरर्थक है।'

सास—'प्राणनाथ ! क्या मैं उस वसीयत को सुन सकती हूं ?'

ससुर—'क्यों नहीं ! इसीलिये तो मैं ने तुम दोनों को बुला भेजा है ।'

उसने मेज की दराज़ से एक कागज निकाला और इस तरह उसे पढ़कर सुनाया :—

'मनकि·····वल्द·····कौम·····साकिन·····का हूँ अपनी सारी जायदाद मनकूला व ग़ैर-मनकूला जिसकी फिहरिस्त नीचे दी गई है अपने बेटे ब्रह्मासिंह की बहू मायादेवी के नाम वसीयत करता हूँ । मायादेवी बड़ी नेक लड़की है । मुझे इसकी सेवा से बहुत सुख और आराम मिला है । वह मेरे पीछे इस सारी जायदाद की अकेली मालिक रहेगी । मेरी स्त्री मु·····और मेरे लड़के मु·····के पालन पोषण का भार इस पर रहेगा । मुझे पूर्ण निश्चय हो गया है कि इस जायदाद का प्रबन्ध इससे उत्तम और कोई भी नहीं कर सकेगा । इसलिये इसे मालिक बना जाता हूं । इसके पश्चात् यह जायदाद इसके लड़के के नाम होगी । यदि मेरे लड़के ब्रह्मासिंह से कोई संतान मायादेवी के गर्भ से उत्पन्न न हो तो मायादेवी उसे अपने पति के नाम वसीयत कर जाये । तब तक वह समझ बूझ वाला भी हो जायेगा और उचित प्रबन्ध करने के योग्य हो सकेगा । मेरी सच्ची इच्छा है कि बहू बेटे प्रेम के साथ रहें जिसमें मुझे परलोक का सुख प्राप्त हो । इसलिये यह वसीयत अपने होश हवास के साथ मायादेवी के नाम लिख देता हूँ कि वक्त पर काम आये ।

जायदाद

(१)·····(२)·····(३)·····

(४)·····(५)·····

द:·····

तीसरा अध्याय

माया की सौत

कमलावती ने अपने क्लर्क से पूछा, 'ब्रह्मासिंह मेरी कोठी पर नित्य ही क्यों आता है ?'

क्लर्क ने उत्तर दिया—'मेरा मित्र हैं। इसलिये आया जाया करता है।'

कमलावती—'यह ठीक है। मित्र है तो कभी २ आये। नित्य ही आने का क्या कारण है ?'

क्लर्क—'यदि आप अप्रसन्न होती हैं तो मैं कह दूँगा कि वह न आया करे।'

कमलावती—'हँसी, मेरा यह अभिप्राय नहीं है, न मैं अप्रसन्न हूँ। तुम मेरे नौकर हो। यदि तुम्हारा कोई मित्र कभी कभी मिलने के लिये आये तो मैं क्यों बुरा मानने लगी। मेरा प्रश्न तो केवल यह है कि वह नित्य ही क्यों आता है ?'

क्लर्क—'आजकल इसके घर में कुछ अनबन सी हो गई है। मेरे पास जी बहलाने के लिये आ जाता है।'

कमलावती—'यदि तुम्हारा मित्र है तो तुम जानते होगे कि वह कैसा आदमी है।'

क्लर्क—'बहुत ही भलामानुष और अच्छे घराने का राजपूत है। उसके बाप की सरकार में बड़ा मान है और यह टेनिस बहुत अच्छा खेलता है।'

कमलावती—'बाप का नाम तो मैंने सुन रक्खा है लड़के को

आंखों से देख लिया। रूपवान और सुन्दर है। यह टेनिस खेलना जानता है तो अब तक तुमने उसे मुझसे क्यों नहीं मिलाया ?'

क्लर्क—'मुझे भय था कि आप अप्रसन्न न हो जायें !'

कमलावती—'अच्छा ! आज जब वह आये तो मेरे पास लाना।'

क्लर्क—'बहुत अच्छा !'

ब्रह्मासिंह समय पर आ गया। क्लर्क ने उसे कमलावती रानी का सन्देश सुना दिया। वह मन में बहुत ही प्रसन्न हुआ। महीनों से इसी ताक में लगा हुआ था परन्तु कोई ऐसा मनुष्य हाथ नहीं आता था जो रानी से उसे मिला सके। क्लर्क की हैसियत ही क्या होती है ! फिर उसे साहस कैसे होने लगा था कि ऐसा करता ! कमलावती का भाव देखकर वह उसे उसके कमरे में लाया। उसने सलाम किया। कमलावती ने गुलाबी मुस्कराहट में सलाम का जबाब दिया और कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। यह बैठ गया।

कमलावती—'तुम.....के बेटे हो ! मैं उन्हें जानती हूँ। मैंने सुना है कि तुम टेनिस बहुत अच्छा खेलते हो। क्या यह सच है ?'

ब्रह्मासिंह—'हाँ ! कुछ कुछ जानता हूँ।'

कमलावती—'तुमको इसमें अभ्यास है और मुझे इसकी धत है। मैं देखती हूँ कि तुम नित्य ही मेरे क्लर्क के पास मिलने आते हो। यदि तुम मेरे साथ खेल सको तो मैं प्रसन्न हूँगी परन्तु तुम बड़े आदमी के लड़के हो, घर में काम काज बहुत होगा, इसलिये मैं ऐसा कहने में संकोच करती हूं।'

ब्रह्मासिंह—'मुझे आप की आज्ञा मानने में कुछ भी सोच विचार नहीं है। घर में भी मेरे पास कोई काम नहीं है। मैंने मिशन कालिज में बी० ए० एल० एल० बी० की परीक्षा पास करली है। आजकल निकम्मा हूँ। पिता जी मुझे कोई अच्छी सरकारी नौकरी दिलाना चाहते हैं परन्तु इसकी बात-चीत अभी कहीं नहीं हुई। आपका क्लर्क मेरा मित्र है, इसलिये दिल बहलाने को आजाया करता हूँ। यदि

मुझे आप के साथ खेलने का सौभाग्य प्राप्त हो गया तो मेरे भाग्य का क्या कहना है !'

कमलावती— मैं भी यही चाहती हूँ परन्तु तुम अभी लड़के हो। मैं तुम से दो चार वर्ष बड़ी हूँगी। बस यही एक बात है। ऐसी दशा में तुम्हारा नित्य प्रति मेरे पास आना कहां तक उचित समझा जायेगा।'

ब्रह्मासिंह ने इस भेद की बात-चीत को अपने लिये लाभदायक समझा। उसके दिल की कली एक दम खिल गई। उसने कहा, 'मैं आप के सामने क्या हूँ और कोई मेरे आने जाने को क्यों बुरा मानने लगा। मैं बेकार हूँ। लोग सोचेंगे कि मैं आप के यहाँ नौकरी की इच्छा रखता हूँ।'

कमलावती मुसकराई—'तो तुम टेनिस खेलाने की तनख्वाह चाहते हो ?'

ब्रह्मासिंह लज्जित हो गया। इससे कोई उत्तर बन नहीं आया परन्तु उस दिन से कमलावती के साथ टेनिस खेलने लगा। कमलावती इससे कहीं चालाक और फुरतीली थी। वह उससे हार जाया करता था फिर भी इन दोनों में मेल मिलाप बढ़ता ही गया।

एक दिन कमलावती ने पूछा, 'ब्रह्मासिंह ! तुम्हारा ब्याह हो गया है या अभी तक कुँआरे ही हो ?'

ब्रह्मासिंह ने लम्बी सांस लेकर कहा, 'मेरा विवाह हो गया है, कुँआरा नहीं हूँ'

कमलावती—लम्बी साँस लेने का रहस्य जानती थी क्योंकि ब्राह्मणी माया इसके पास कुछ दिनों से आया जाया करती थी। माया और कमलावती में घंटों बातें हुआ करती थीं और दोनों हँसती रहती थीं। ब्रह्मासिंह के घर की बातें इस तरह कमलावती के कानों तक पहुँच चुकी थी।

कमलावती बोली, 'यह और भी अच्छी बात है।'

ब्रह्मासिंह ने दूसरी बार आह खींची, 'परन्तु विवाह होना न होना बराबर है।'

कमलावती—'यह क्यों ?'

ब्रह्मासिंह—'मेरी स्त्री बड़ी ही काली कलूटी है और जिस दिन से आई है मैं उससे बराबर अलग रहता हूँ। घर भी कम जाता हूँ और दिल बहलाने के लिये इधर-उधर मारा २ फिरता हूँ।'

कमलावती—'काले शरीर और बुरी सूरत के अन्दर उजला और सुन्दर दिल रहता है। सम्भव है तुम्हारी स्त्री रंग रूप की अच्छी न हो परन्तु स्वभाव की पवित्र और नेक हो। तुम भूल में हो ऐसा नहीं करना चाहिये था।'

ब्रह्मासिंह—'मन ही तो है। जिधर से घृणा हो गई सो हो गई। अब तो इस जन्म में ऐसी स्त्री के साथ मेरा रहना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है।'

कमलावती—'तो फिर क्या करोगे ? क्या दूसरा विवाह करना चाहते हो ?'

कमलावती ने यह प्रश्न बड़े चुलबुलापन के साथ किया जिस से ब्रह्मासिंह के मन में अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न हुये। प्रश्न करने के पश्चात् उसने अपना सर झुका लिया और पृथ्वी की ओर आंख गड़ाकर देखने लगा। ब्रह्मासिंह ने समझा कि वह उस पर लट्टू हो गई है।

ब्रह्मासिंह ने उत्तर दिया—'मैं विवाह से कहीं बढ़कर आप की सेवा में इसी हैसियत से पड़ा रहना उत्तम समझता हूँ।'

कमलावती ने हँसकर पूछा, 'इसका तात्पर्य मैं क्या समझूँ ?'

ब्रह्मासिंह चुप हो गया, लज्जा वश गर्दन झुका ली और उसकी आंखें डबडबा आईं।

कमलावती—'स्पष्ट शब्दों में कहो। जो कहना हो कह डालो

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

मन में कुछ छुपा न रक्खो। मैं तुम्हें प्रसन्नता के साथ बोलने व आज्ञा देती हूँ।'

ब्रह्मासिंह का साहस बढ़ गया, 'अपनी सेवा में रहने का सौभग्य प्रदान कीजिये। केवल यही इच्छा है और बस !'

कमलावती—'यह तो तुमको पहिले ही से प्राप्त है। मैं कब चाहती हूं कि तुम मेरे यहां से अलग हो ! तुम्हारे रूप रंग का मनुष्य नित्य प्रति हाथ तो नहीं आता।'

ब्रह्मासिंह कमलावती के पाँव पर गिर पड़ा। उसने अपने हाथ से उठाकर कुर्सी पर बिठा दिया।'

कमलावती—'तुम राजपूत हो। क्या इस सुगमता से प्राप्त की हुई वस्तु की तुम बराबर इज्जत करते रहोगे ?'

ब्रह्मासिंह—'इज्जत है क्या वस्तु ! तन मन धन आप पर न्यौछावर हैं।'

कमलावती—'तुम जानते हो कि मैं विधवा हूँ।। क्या हिन्दू विधवा के लिये इस प्रकार की बातें सुनना या ऐसी बातें कहना धर्म, व्यवहार और मर्यादा की दृष्टि से अनुचित नहीं है ?'

ब्रह्मासिंह—'जहां प्रेम होता है वहां से धर्म, मर्यादा सभ्यता और लोक-लाज सब दुम दबाकर भाग जाते हैं।'

कमलावती—'परन्तु मैं परीक्षा लिये बिना कोई बात तै नहीं कर सकती।'

ब्रह्मासिंह—'हां ! परीक्षा अवश्य लीजिये। इस परीक्षा की कोई हद भी है या बराबर परीक्षा ही होती रहेगी ?'

कमलावती मुस्कराई—'केवल सात दिन की परीक्षा है। यदि तुम इसमें पूरे उतरे तो फिर जो कुछ कहोगे मैं सुनूँगी और यदि पूरे नहीं उतरे तो फिर मुझ से तुम से कोई बात न होगी।'

ब्रह्मासिंह—'मैं तैयार हूँ। जैसे चाहिये परीक्षा की कसौटी पर कस कर खरे खोटे की परख कर लीजिये।'

कमलावती—'बहुत अच्छा ! आज रात से परीक्षा आरम्भ होगी । तुम चुपके से आना । कमरा अँधेरा रहेगा और कोई यहाँ न रहेगा । मैं अपने चौकीदार से कह रक्खूँगी कि तुम्हारे साथ रोक टोक न की जाये । तुम आओ । धीरे-धीरे बात-चीत करो जिसमें कोई सुनने न पाये और एक घंटा मेरे पास रहकर चले जाया करो । सात दिन तक बराबर इसी तरह आते रहो ।'

ब्रह्मासिंह—'मैं तैयार हूँ ।'

कमलावती—'परन्तु भूले से भी खाली हाथ किसी दिन मत आना । नित्य ही दो अँगूठियाँ लाया करो । एक पर तुम्हारा नाम खुदा रहे और दूसरी एक सादी हो । तुमको अधिकार है कि इनमें बहुमूल्य जवाहिरात जड़वा लो परन्तु यह मेरा आग्रह नहीं है । साथ ही दो बहुमूल्य रूमाल भी लाया करो । सात दिन में चौदह अँगूठियां और चौदह रूमाल भेंट करने पड़ेंगे । इसका बराबर ध्यान रहे कि रात की बात की दिन में कोई चर्चा न होने पाये । जैसे पहिले दिन अदब के साथ आये थे वैसा ही बराबर ध्यान रहे ।'

ब्रह्मासिंह ने स्वीकार कर लिया । कमलावती ने इसे घर जाने और रात के समय आने की ताकीद की ।

अन्धा क्या चाहे ? दो आँखें । ब्रह्मासिंह प्रसन्नता के साथ घर आया । दो अँगूठियां मोल लीं—एक सादी परन्तु नीलम या पुखराज जड़ी हुई दूसरी पर उसका अपना नाम खुदा हुआ था । इसके अन्दर इतना उतावलापन था कि उसी दिन सारी अँगूठियाँ सुनार से बनवा लीं और चौदह रेशमी रूमाल भी मोल ले लिये ।'

रात आई । उसे चैन कहाँ ! उठा, कमलावती के बँगले पर पहुँचा । किसी ने रोक टोक नहीं की । इसने समझा कि रानी ने चौकीदार को समझा रक्खा है । अँधेरे कमरे में पहुँचा । वहाँ उसके साथ प्रेम का व्यवहार किया गया । उसने दो अँगूठी और दो रूमाल भेंट किये । स्त्री पुरुष दोनों धीरे-धीरे देर तक बात-चीत करते रहे ।

एक घंटे के पश्चात् यह उठकर घर चला आया। सात दिन त बराबर ऐसा ही होता रहा।

इसने समझ लिया कि अब वह परीक्षा में पास हो गया और अब कमलावती उसी की हो गई परन्तु आठवें दिन यह विचार असत्य निकला।

जिस समय वह आठवें दिन टेनिस खेलने आया कमलावती क्रोध में भरी थी। उसने सलाम किया। इसने सलाम का जबाब तक नहीं दिया। वह कुर्सी पर बैठ गया। दोनों ही चुपचाप! इसे आश्चर्य हुआ कि 'यह क्या बात है? कहीं परीक्षा में फेल तो नहीं हो गया।'

जब इस प्रकार आध घंटा बीत गया। इसने साहस से काम लिया। अदब के साथ पूछा, 'कहिये आपका मिजाज कैसा है? क्या यह सेवक परीक्षा में फेल हो गया?'

कमलावती ने उसे आश्चर्य के साथ देखकर कहा, कैसी परीक्षा! किसने परीक्षा ली? क्या तुमको अपने बी० ए० एल० एल० बी० की परीक्षा की याद आई है?'

ब्रह्मासिंह घबरा उठा, लड़खड़ाते हुये कहा, सात रात की हाजिरी की परीक्षा।'

कमलावती क्रोध से लाल भभूला हो गई, 'किसने रात में हाजिरी का तुम्हें हुक्म दिया था? क्या कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहे हो?' अब ऐसी बहकी बहकी बातें कभी न करना! तुमने सभ्यता का ध्यान नहीं रक्खा इसलिये मैं हुक्म देती हूँ कि मेरे बँगले के हाते में भूल कर भी न आना और यदि आये तो फिर कुशल नहीं है।

कमलावती ने उसी समय अपने क्लर्क और चौकीदार को बुला कर हुक्म दिया, 'अब यह मनुष्य कभी भी मेरे पास न आने पाये।'

सब दंग थे। या तो पहिले ब्रह्मासिंह की इतनी आवो भगत की जाती थी या आज एक दम उसके विरुद्ध किया गया। कोई बात समझ में नहीं आई। ब्रह्मासिंह ने वहां से भागने ही में कुशल समझी।

चौथा अध्याय

माया का पति

ऊँचे चढ़कर गिरना बड़े शोक की बात है। किसी बने बनाये काम के बिगड़ जाने से महा दुःख होता है। मान प्रतिष्ठा को पाकर फिर उसे खो देना हृदय को विदीर्ण कर देता है। ब्रह्मासिंह जो चाहता था वह वस्तु उसके विचार में उसे मिल गई थी परन्तु शीघ्र ही बुरी तरह से छिन गई और साथ ही उसके साथ अनुचित व्यवहार भी किया गया। ऐसा क्यों हुआ ? और ऐसा क्यों किया गया ? न हम कह सकते हैं न कोई और कह सकता है।

वह घर पर आया। शरीर काँपता हुआ ! मुँह पर हवाइयां उड़ती हुई ! आंखों से उदासी बरसती हुई ! नौकरों ने उसे देखा परन्तु कारण पूछने का साहस किसी को भी न हुआ। जब से माया घर में आई उसी दिन से उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आगया था। घर का इकलौता बेटा ! और एक तरह से उसका मालिक भी था। सब उसका काम तो कर देते थे परन्तु चुपचाप रहते थे। वह डरते रहते थे कि कहीं कुछ बुरा भला न कह बैठे। जब से वह कमलावती के यहां आने जाने लगा उसकी अवस्था बदलने लगी। प्रसन्न चित्त की अवस्था तो उसकी थी नहीं परन्तु हमें और कोई शब्द भी नहीं मिलता। वह किसी बड़े से बड़े दुख से भी नहीं घबराता था। आज उसकी अवस्था एक दम बदल गई।

बैठक में जाकर द्वार बन्द करके खाट पर लेट रहा और अपने भाग्य पर विचार करने लगा। देर तक इसी दशा में पड़ा रहा। उसने क्या क्या सोचा होगा इसे कोई क्या जान सकता है ? उसे

केवल कमलावती के अनुचित व्यवहार ही का दुख नहीं हुआ हो किन्तु नाना प्रकार के विचार बाइसकोप की तस्वीरों की तरह उसकी आंखों के सामने आये होंगे—माया का आना, उससे अनबन करना, माँ बाप की दृष्टि का बदलना, फिर वसीयत का माया के नाम लिखा जाना, कमलावती का प्रेम, और उस प्रेम के छलकते हुये प्याले को यकबारगी पत्थर पर पटक देना। यही सब बातें होंगी जिन पर वह विचार कर रहा होगा।

वह देर तक खाट पर पड़ा रहा। बूढ़ी माँ देखने आई। 'ब्रह्मा तेरा जी कैसा है?' उसने मुँह बनाकर कहा, 'मैं अच्छा हूँ, कुछ देर अकेला रहने दे।'

माँ बोली, 'बेटे! मैं पानी लायी हूं। उठ हाथ मुँह धो ले और मेरे हाथ से कुछ खा पी ले। फिर मैं आप चली जाऊँगी। यदि तू नहीं चाहता कि मैं तेरे पास बैठूँ तो मैं क्यों हठ करने लगी?'

यह शब्द कुछ ऐसे ढंग से कहे गये थे कि उसके दिल को बड़ी चोट लगी। जब तक मनुष्य के अपने दिल को ठेस नहीं लगती तब तक वह दूसरों के दिल की दशा को बहुत कम समझ सकता है। वह उठ बैठा, माँ के पांवों को हाथ लगाया और ठण्डी आह खींची।

माँ—'आह! मेरा लाल! तू दुखी है। आज तेरा मुख उदासी से सूख गया है। क्या हुआ? पिताजी ने तो कुछ नहीं कहा? यह प्रश्न ही व्यर्थ है। वह तुझे कुछ नहीं कहते। घर में दो चार लड़के होते तो इसकी सम्भावना होती। वह तुझे देख कर जीते हैं। मुझे तू जानता ही है। तू मेरी आंखों का तारा है। फिर तुझे दुख किस बात का है?'

ब्रह्मासिंह—'बहुत सी बातें संसार में ऐसी होती हैं जिनको लड़के अपनी माता से नहीं कह सकते।'

माँ—'यह सच है। तेरा दुख ऐसा ही होगा। धैर्य से काम ले। तुझे शान्ति मिलेगी।'

ब्रह्मासिंह ने मुँह हाथ धो लिया। माँ ने अपने आँचल से उसका मुँह पोंछ दिया, मिठाई खिलाई, पानी पिलाया और टहलनी को पान लाने की आज्ञा दी। यों तो वह दुखी था परन्तु माँ के व्यवहार ने उसके हृदय पर विचित्र प्रभाव डाला। उसने समझ लिया कि वह किसी सच्ची देवी के पास बैठा हुआ है।

ब्रह्मासिंह ने पूछा—'इस समय तू कैसे आई ?'

माँ (मुसकराकर)—'यह लो ! मैं जाती तो कहाँ जाती ? तेरे पास न आती तो किस के पास आती ? क्या इस संसार में तेरे अतिरिक्त और भी कोई है जिसके पास आती जाती ? एक तू है और एक तेरी बहू माया है। उसके साथ भी प्रेम तेरे ही कारण है। जब काम काज से मन घबरा जाता है तुम में से किसी को साथ ले बैठती हूं और अपना दिल बहला लिया करती हूँ। तुम दोनों मेरे बुढ़ापे के खिलौने हो।'

सीधी सादी और प्रेम भरी बातों ने और भी अपना गहिरा प्रभाव डाला। वह भोली भाली अवश्य थी परन्तु ऐसी तो नहीं थी जो माया के साथ बेटे के अनबन का हाल न जानती रही हो। जानती बूझती तो थी परन्तु जान बूझकर अनजान बनी हुई थी और बातें ऐसी करती थी कि सुनने वाला उसे एक दम अज्ञान समझता था।

ब्रह्मासिंह ने कहा, 'मैं तेरा कपूत लड़का हूँ।'

माँ—'ऐसा क्यों ? तू एक है। जैसा है वैसा है। यदि तेरे अतिरिक्त कोई और दूसरा लड़का होता तो मैं किसी को कपूत और किसी को सपूत कहती। जब दो नहीं है तो फिर किसे अच्छा और किसे बुरा कहा जाये। हाँ ! जब तेरे बाल बच्चे होंगे तब सम्भव है मुझे ऐसा कहने का अवसर मिले।'

ब्रह्मासिंह अपनी मां को प्यार करता था। माता का प्यार तो साधारण बात है परन्तु वास्तव में उसके हृदय में मातृ-भक्ति थी।

लड़का अच्छा था बुरा नहीं था। माँ बाप भी इसको भली भांति जानते थे। वह भी जानता था कि उसके अतिरिक्त घर का कोई वारिस नहीं था। बाप ने माया के नाम सारी जायदाद वसीयत कर दी। इससे भी उसके दिल को ठेस नहीं लगी क्योंकि जिस विचार से यह काम किया गया था वह उसे जानता था। कभी-कभी वह माया के साथ अपने अनुचित व्यवहार पर पश्चाताप भी करता था परन्तु बेचारा करता भी तो क्या करता! मनुष्य का मन बड़ा ही बलवान है। वह जैसा नाच चाहे नचाये।

ब्रह्मा सिह—'मां! चुप रह, ऐसी बातें न किया कर।' उसने उसका मुँह अपने हाथों से बन्द कर लिया और खिलखिलाकर हँस पड़ा। यह उसका बचपन का स्वभाव था। कमलावती के अनुचित व्यवहार का ध्यान एक दम जाता रहा। देखो! मनुष्य का मन एक विचित्र वस्तु है। कभी कुछ कभी कुछ। ऊँचे चढ़ने पर आयेगा तो आकाश पर पांव जमायेगा और जब नीचे गिरेगा तो फिर पाताल की तह तक पहुँच जायेगा। ब्रह्मासिह इस समय अपने सारे दुखों को भूल गया।

बाप उसी समय दफ्तर से आया था। यह सुनते ही कि लड़के का जी अच्छा नहीं है सीधा उसके कमरे में चला आया। ब्रह्मासिह खाट से उठा. बाप के पांव छुये और माँ के पास पृथ्वी पर बैठ गया। कमरे में खाट के अतिरिक्त कुर्सी इत्यादि नहीं थी इसलिये बाप तो खाट पर बैठा और यह पृथ्वी पर बैठ गया। नौकर ने हुक्का चढ़ाकर सामने रख दिया।

बाप—'ब्रह्मा! आज तू कैसा है?'

ब्रह्मा—'अच्छा हूँ। कोई बात नहीं है।'

बाप—'युवा मनुष्य का हृदय कोमल होता है। वह बूढ़ों जैसा नहीं होता। मुझ पर चाहे दुख का बोझ पड़े, मैं उसे सह लूँगा परन्तु तुझे दुखी देखना नहीं चाहता।'

ब्रह्मासिंह चुप हो रहा।

बाप ने अवसर पाकर कहा, बेटे ! मैं ने वसीयत करदी। तुझ में और माया में मैं कोई भेद नहीं समझता। माया माया है और ब्रह्मा ब्रह्मा है। माया का नाम ही नाम है, ब्रह्मा सर्व व्यापक तत्व है। इसके प्रबन्ध का भार तेरे ही सर होगा।'

ब्रह्मा—'जब तक आप का हाथ मेरे सर पर है मैं बेपरवाह हूँ। पीछे जो होगा देख लिया जायेगा। आपकी आज्ञा सर आंखों पर ! परन्तु मैं चाहता हूँ कि आप के रहते रहते मुझे संसार का कुछ अनुभव हो जाता तो अच्छा था।'

बाप—'तू चाहता क्या है ? क्या घर का काम काज तेरे लिये उपयोगी नहीं हो सकता ?'

ब्रह्मा—'यह सब सच है परन्तु मैं आप की अपेक्षा बहुत स्वतन्त्र हूँ। आपका विचार नौकरी दिलाने का था। मैं नौकरी के नाम से भागता हूँ। यदि आज्ञा हो तो मैं कुछ दिनों के लिये इधर उधर सैर कर आऊँ। घूमने फिरने से भी बहुत कुछ अनुभव बढ़ता है।'

बाप—'फिर तुझे रोक किसने रक्खा है ? तू स्वतन्त्र है। यदि तू नित्य ही पत्र और तार द्वारा अपना हाल चाल देता रहे तो तू जा सकता है। रुपया पैसा सब कुछ तेरे पास है। कमी किसी बात की नहीं है। दो चार आदमी साथ ले और घूम फिर आ। यदि बनारस चला जाय तो और भी अच्छा है। वह हिन्दुओं का पुराना तीर्थ स्थान और संस्कृत का भण्डार है। वहां सेन्ट्रल हिन्दू कालिज और हिन्दू यूनिवर्सिटी का कारबार देखने योग्य है। बनारस जाने से बहुत से लाभ हो सकते हैं।'

बनारस का जाना ब्रह्मासिंह को स्वीकार नहीं था। वह बाप का आज्ञाकारी तो था परन्तु उसके लोभ लालच के स्वभाव से उसे घृणा थी। इसके अतिरिक्त वह माया के मां बाप के घर में जाना नहीं चाहता था। उसके मां बाप दोनों ही ऐसी बनावटी बातें किया

करते थे जिससे यह पता चलता था कि वह स्त्री पुरुष के अनबन क हाल नहीं जानते थे। यही दशा ब्रह्मासिंह की भी थी। वह भी इस बात को जान बूझकर कभी प्रकट नहीं करता था।

ब्रह्मासिंह ने कहा—'पूर्व की ओर जाने की इच्छा नहीं है। हां ! यदि आप आज्ञा दें तो राजपूताने की सैर कर आऊँ। देखूँ राजपूत घरानों का रंग ढंग इस समय कैसा है।'

बाप—'तेरी प्रसन्नता से मैं भी प्रसन्न हूँ। यदि राजस्थान ही जाना है तो तू जा सकता है। मुझे इसमें इन्कार नहीं है।'

यहां तक बात-चीत होने पाई थी कि नौकर ने आकर क्लर्क बाबू के आने की सूचना दी। माँ बाप दोनों उठ खड़े हुये और अपने अपने कमरे में चले गये। ब्रह्मासिंह बैठक में आया और क्लर्क बाबू को भीतर आने की आज्ञा दी। नौकर ने एक आराम कुर्सी लाकर रख दी। क्लर्क बाबू आये और सलाम करके कुर्सी पर बैठ गये।

ब्रह्मासिंह—'कहो क्या समाचार लाये हो ?'

क्लर्क—'महा दुखदायी और आश्चर्य जनक ! तुम्हारे चले आने पर रानी ने मुझे बुला भेजा और एक महीना आगे का भी वेतन देकर नौकरी से एक दम अलग कर दिया। आप भी उसी समय कोठी छोड़कर अपने आदमियों के साथ शिमला चली गई। वह क्रोध की मूर्ति बनी हुई थी।'

ब्रह्मासिंह—'मैं आप चकित हूँ। क्या कहूँ। क्या न कहूँ ! कोई बात मेरी समझ में नहीं आती परन्तु कोई न कोई कारण अवश्य होगा। किसी का स्वभाव इतनी जल्द यों ही नहीं बिगड़ता।'

क्लर्क—'आज आठ नौ दिन हुये रानी जी मुझ से कम बात-चीत करती थीं। इसका भी कोई कारण होगा।'

ब्रह्मासिंह के कान खड़े हुये। उसने अपने छिपे चोरी की भेंट करने की बात क्लर्क बाबू से नहीं कही थी। न इसकी आवश्यकता ही थी। साथ ही सभ्यता-विरुद्ध बात भी थीं। इसके अतिरिक्त दोनों

की हैसियत में आकाश पाताल का अन्तर था। यह घर का धनवान और वह निर्धन था। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों मित्र थे परन्तु यह मित्रता बचपन की थी जब दोनों स्कूल में एक साथ पढ़ रहे थे।

ब्रह्मासिंह ने पूछा, 'क्या रानी के स्वभाव में परिवर्तन का कारण तुम कुछ भी नहीं जानते ?'

क्लर्क—'एक दम नहीं। कुछ अनुमान होता है। इधर एक रूपवती युवती रानी से मिलने आई थी। सम्भव है उसी ने यह विष बोया हो।'

ब्रह्मासिंह—'तुम उसे जानते हो ?'

क्लर्क—नहीं।'

ब्रह्मासिंह—फिर इसका पता लगना कठिन है। अब तुम क्या करोगे ? नौकरी तो चली गई।'

क्लर्क—'कहीं न कहीं नौकरी मिल जायेगी। इसकी चिन्ता नहीं है।'

ब्रह्मासिंह—'मैं राजपूताने जा रहा हूँ। पिता जी ने आज्ञा दे दी है। यदि चाहो तो साथ चलो। मैं तुम को वही वेतन दूंगा जो रानी के यहाँ से मिलता था।'

क्लर्क—'आप ने बड़ी कृपा की। मुझे आप के साथ रहना स्वीकार है। कब चलना होगा ?'

ब्रह्मासिंह—कल या परसों।'

पाँचवां अध्याय

माया और ब्रह्मासिंह

ब्रह्मासिंह कमलावती के अनुचित व्यवहार से दुखी था परन्तु माँ बाप के सलूक से उसका दुख एक मात्र हलका हो गया। उसने कमलावती को भुलाया नहीं। वह उसे बराबर स्मरण करता रहा। वह कभी कभी अपने मन में सोचा करता था कि कौन जाने अब रानी देहली में आयेगी या नहीं परन्तु वह अपने भाव को औरों पर प्रकट नहीं होने देता था। दिन तो किसी तरह कट गया। रात आई। खाना खाकर खाट पर लेट रहा। नींद किसे आती है! और फिर ऐसी दशा में! करवटें बदलता रहा। कमरे में बिजली की रोशनी थी। आँखें बन्द किये हुये पड़ा रहा। किसी के पांवों की आहट मिली—आंखें खुल गईं, पूछा—'कौन ?

उत्तर मिला—'आप की अभागिनी माया।'

'क्या मैंने तुझे हुक्म नहीं दिया था कि अपना मुँह न दिखाना ?'

'मुझे आपका हुक्म याद है। कई वर्ष तक आपकी आज्ञा का पालन किया। माता जी से पता लगा कि आप राजपूताने जाने वाले हैं। मुझ में भी दर्शन की तड़प थी। माता जी के बहुत हट करने पर मैं आप के सामने आई हूँ। अपराध क्षमा कीजिये।'

अच्छा! अब चली जा।'

'कहां जाऊँ ? जहां जाने का हुक्म हो बतलाइये। माया को तो आप के चरणों की छाया के अतिरिक्त और कहीं रहने की जगह नहीं है। यदि आपकी आज्ञा है कि मैं आत्मघात करलूं तब भी मैं तैयार हूँ। यदि आप अपने हाथ से मेरा गला घोंट दें तब भी एक

शब्द आप के विरुद्ध मुँह से न निकालूंगी। आप स्वयं सोच समझ कर निर्णय कीजिये। इससे अधिक मैं क्या कह सकती हूँ !'

यह शब्द करुणा से भरे हुये थे। बातों से उदासी टपक रही थी। ब्रह्मासिंह का हृदय काँप उठा। उसने बैठ जाने का इशारा किया। वह हुक्म पाकर बैठ गई।

'तू कौन है ?'

'आप की माया।'

'यह तो मैं जानता हूँ।'

'जब आप जानते हैं तो इससे अधिक मैं और क्या कहूँ !'

दर्द भरे हुये शब्दों ने ब्रह्मासिंह का दिल हिला दिया।

'मेरा तेरा संयोग क्यों हुआ ?'

'मुझे इसका पता नहीं। कर्म की गति ने ऐसा किया होगा। मुझे तो आप से कोई दुःख नहीं है। हाँ ! दुखी आप हैं। जब मुझे कोई दुःख ही नहीं है तो मैं इस संयोग को भी बुरा नहीं कहती।'

'क्या सचमुच ऐसा ही है ?'

'इसमें सन्देह ही क्या है ? मैं आप को बुरा भला क्यों कहने लगी ! ईश्वर ने जो मेरे लिये उत्तम समझा वह किया। उसे मेरे साथ शत्रुता तो हो नहीं सकती जो मेरी बुराई ही करता। इसमें भी मौज होगी और मैं उसी मौज के सहारे रहना चाहती हूँ।'

'परन्तु मुझे तो शिकायत है।'

'मेरी ओर से या और किसी की ओर से ?'

वह उसका उत्तर क्या देता ! सोचता रहा। कुछ देर पीछे बोला—'तू निर्दोष है। तेरा कोई भी अपराध नहीं है।'

'मालिक का धन्यवाद है ! फिर दोष किस का है ? किसी न किसी का दोष तो है ही वरन् आप को शिकायत क्यों होती !'

वह फिर एक दम चुपका हो रहा। एक शब्द भी मुख से न निकल सका। वह मन ही मन सोचने लगा :—

'माया का दोष नाम के लिये भी नहीं है। माया के माँ बाप को कौन दोषी ठहरा सकता है! माँ बाप अपनी कन्या के लिये अच्छा ही वर ढूंढ़ते हैं। यदि दोष है तो मेरे माँ बाप का है परन्तु यहां भी वही प्रश्न आता है। अपने इकलौते लड़के को कोई भी दुखी नहीं करना चाहता। दोनों उसके प्रेम का दम भरते हैं। यह कभी हो नहीं सकता कि वह जान बूझकर अपने लड़के को दुखी करें। वह भी निर्दोष हैं। उन्होंने जो वसीयत उसके नाम की है उसमें भी मेरी ही भलाई का ध्यान है। जिसने दुनिया नहीं देखी है वह धन द्रव्य पाकर मतवाला बन जाता है और उसे शीघ्र ही नाश कर देता है। स्त्री का नाम रहने से लड़के का अधिकार तो कहीं नहीं चला गया। यह सब जायदाद के बचाने का ढंग है। फिर क्या ईश्वर दोषी है? उसे क्या पड़ी थी जो ऐसी शत्रुता का काम करता! वह तो न्यायकारी है। फिर इसमें दोष है तो किस का? कमलावती ने कहा था—सुन्दरता दो प्रकार की होती है, एक शरीर की, दूसरी हृदय की। बाहरी आंख वाले शरीर की सुन्दरता पर मरते हैं जैसा अभी आज उसका परिणाम हुआ परन्तु बुद्धिमान मनुष्य की दृष्टि हृदय की सुन्दरता पर रहती है। माया का हृदय सुन्दर है। वह सौन्दर्य की खानि है। आज चार वर्ष हो गये उसने न किसी से कोई शिकायत की, न कभी बुरा भला कहा। सम्भव है उसने मां से भी शिकायत न की हो। तब ही तो वह इसे देवी कहा करती हैं। इसने अपनी सेवा और आज्ञा पालन से दोनों को मुट्ठी में कर रक्खा है और वह बेटे में और उसकी बहू में नाम के लिये भी भेद नहीं समझते। दूसरे घर की लड़की आये और पराये घर के लोगों पर अपना सिक्का जमाये। कारण यह है कि वह इस लोक की स्त्री नहीं है किन्तु स्वर्ग लोक की देवी है। यह तो मानी हुई बात है। हो न हो मेरी ही आंखों का दोष है जो चमड़े की रंगत पर मरता है। आज ही उन्हें उचित दंड भी मिल गया—परन्तु मैं करूँ तो क्या करूँ! दिल नहीं चाहता

कि उसको आंख उठा कर देखूँ। मुझे कौन बहका रहा है और मैं क्यों एक निर्दोष स्त्री पर इतना अत्याचार कर रहा हूँ !'

यह विचार बिजली के कौंधे की तरह उसके हृदय में आते गये। अन्त में उसने सोच समझ कर कहा—'इसमें मेरा ही दोष होगा। सब के सब निर्दोष दिखलाई देते हैं।'

'आप का भी इसमें दोष नहीं है। दोष आपकी माया के पहिले जन्म के कर्मों का है। जिसने जैसा किया है उसे वैसा ही फल मिलता है।'

'अरी ! तू कौन है जो इस प्रकार बातें कर रही है ?'

'मैं आपकी माया हूँ। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं जानती।'

'यह तू ने कैसे जाना कि तू मेरी है ? मैं तो अपने आपको तेरा नहीं कहता।'

'आप के अतिरिक्त किसी और पर मेरी दृष्टि नहीं है।' आप ही मेरी आंखों में खुबे हो। इसलिये मैं आपको अपना और अपने आप को आप की समझती हूँ।'

'क्या तू बावली है ?'

'यदि बावलेपन का यही चिन्ह है तो मैं बावली हूँ।'

'परन्तु मैं तो तुझे अपनी नहीं समझता।'

'यह आप का काम है। मैं अपने आपको आप की समझती हूँ। यह मेरा काम है।'

'यह ममझ बूझ तुझ में कब तक रहेगी ?'

'जब तक जान में जान है। इस जन्म में तो जाती नहीं। दूसरे जन्म का हाल ईश्वर जाने।'

दिल में विचित्र भाव उत्पन्न हुआ।

'तू है कौन ?'

बार बार वही प्रश्न। मैं आपकी माया हूँ।'

'मेरी माया होती तो मेरे साथ रहती। मैंने तुझे अपने साथ नहीं

रक्खा और फिर भी तू बार बार वही कहती चली आती है।'

'छाया तन के साथ है। वह कभी तन से अलग नहीं होती। तन चाहे उसे देखे या न देखे, अपनी आंखों पर पट्टी बांध रक्खे, छाया तो एक क्षण के लिये भी उससे बिलग नहीं होगी।'

ब्रह्मासिंह ने कहा—'घूँघट उठा दे। अपना रूप तो मुझे दिखा।'

माया ने घूँघट उठा दिया। उसने देखा—पहिले यह स्त्री बड़ी काली कलूटी थी। अब इसका रंग निखरा हुआ था। सूरत में कुछ पीलापन आ गया था।

'क्या तू वही माया है जो बनारस से आई थी ?'

'हाँ ! मैं वही हूँ। दूसरी नहीं हूँ।'

'तेरे मुख की कालिमा किधर चली गयी ?'

'आप के तेज की उस पर छाया पड़ी। बनारस की ओर गर्मी अधिक है। देहली में यह बात एक दम नहीं है। दिन रात परदे के भीतर रहने से रंग रूप में कुछ थोड़ा सा परिवर्तन आ गया है।'

'तू विचित्र स्त्री है।'

'बुरी या भली ?'

'भली है। बुरी नहीं है। बुरी कहने वाली जिह्वा कट गई। मैंने अपने जीवन में तुझे बुरी कभी नहीं कहा। हाँ कुरूपा अवश्य कहा करता था।'

'आज मेरा भाग्य उदय हो गया जो आपको पसन्द आ गई। मुझ से बढ़कर भाग्यवान संसार में कौन है ?'

'देख ! झूँठा नतीजा न निकाल। मैंने तुझे रूपवती नहीं कहा।'

'मैं रूपवती नहीं हूं।'

'फिर तू क्या है ?'

'मैं आपकी दासी हूँ। प्रकृति माता ने आपकी सेवा के लिये मुझे भेजा है। आज की बातों से पता लग गया कि अब मुझे सेवा का सौभाग्य प्राप्त होगा। इस दृष्टि से मैं अपने आपको भाग्यवान

समझती हूं। इसके अतिरिक्त मुझे और किसी बात का ध्यान नहीं है।'

वह चुप हो रहा—'यह स्त्री है या कौन है ? मनुष्य में ऐसी सहन शक्ति देखने में नहीं आती। इसके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया गया। यह उफ् तक नहीं करती और मारने वाले हाथों को चूमने के लिये तैयार है।'.....

उसने कहा—'माया ! मैं तुझ से कोई भी सेवा नहीं लेना चाहता।'

'आप की इच्छा सेवा लीजिये या न लीजिये, आपको पूर्ण अधिकार है। दासी सेवा के लिये तैयार है। अमीरों के घरों में बहुधा कोतल घोड़े बँधे रहते हैं जो केवल दिखावे के लिये होते हैं। उनसे सवारी नहीं ली जाती। यदि माया इसी प्रकार आपकी बांदी है तो उसे क्या शिकायत हो सकती है ! मालिक को सेवा लेने या न लेने का अधिकार है। लौंडी बांदी क्या कह सकती हैं !'

'माँ बाप ने अपने कर्तव्य से मुझे तेरे आधीन बना दिया।'

'वह कैसे ?'

'अपनी जायदाद तेरे नाम वसीयत करदी।'

'यह काम मेरी इच्छा के विरुद्ध किया गया। वह अपनी हठ पर आ गये थे। मैंने बहुत कुछ कहा सुना परन्तु उन्होंने मेरी बातों पर ध्यान तक नहीं दिया। फिर भी इसमें कोई बुराई नहीं दिखलाई देती।'

'वह कैसे ?'

'मेरा तन बदन सब आपका है। यदि इस पर लाखों भूषण और जवाहिरात लादे जायें तब भी तो वह आप ही के होंगे। माता जी ने मुझे ऐसा समझाया और मैं चुप हो रही। यदि उनके इस काम में आप बुराई समझते हैं तो आज्ञा दीजिये उसकी सूरत बदल दी जाये। मैं भी आप ही की हूँ और वसीयत भी आप ही के लिये है। नाक को चाहे सीधे पकड़िये या हाथ घुमाकर पकड़िये। बात तो

एक ही है।'

'मुझे कोई शिकायत नहीं है। मैंने जीवन में बहुत बड़ी भूल की। ईश्वर ने अनमोल रत्न दिया था। मैंने अनजान में उसे मिट्टी में मिला दिया परन्तु वह अब तक अपनी चमक दमक के साथ चमक रहा है। मालिक का धन्यवाद है! मैं कल या परसों यहाँ से चला जाऊँगा। शीघ्र आने का ध्यान रक्खूंगा। फिर इसी सिलसिले में तुझ से बात चीत करूँगा।'

'आप प्रसन्नता के साथ जा सकते हैं। मैं आपके सुख में बाधक होना नहीं चाहती। केवल यही प्रार्थना है कि अपने हृदय के एक कोने में मेरे लिये भी थोड़ी सी जगह दे दीजिये। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं चाहती।'

यह कहते ही माया की आंखों से आंसुओं के तार बँध गये। उसने दो बार आंचल से अपनी आंखें पोंछ लीं। ब्रह्मासिंह ने कहा—'माया! तू रोती है?'

यह हँसी खुशी के आँसू हैं। इनके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं हैं।'

'अच्छा। अब तू जा। अच्छा हुआ जो चलते चलाते तुझे देख लिया। अब आज से तूने मेरे स्वभाव में बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया। मैं तुझे देखकर प्रसन्न हूँ। ईश्वर करे तुझे भी सच्चा सुख प्राप्त हो। मैंने तो अपनी समझ में तुझे मार ही डाला था।'

माया ने साहस से काम लिया। आज उसने पति के पाँवों को हाथ लगाया, उन्हें चूमा और प्रेम के आंसू बहाती हुई बिदा हुई और उसे अपनी बातों पर सोचने के लिये छोड़ गई।

दूसरा भाग

पहिला अध्याय

—※※—

ब्राह्मणी माया

सास और बहू

विवाह हुआ। ब्राह्मणी माया बनारस से दिल्ली आई। जो अन्तर पूर्व और पश्चिम में है वही बनारस और दिल्ली में है। वह उदय की जगह है और यह अस्त की है। उससे सूर्य निकलता है। इसमें डूब जाता है। बनारस में गंगा बहती है। दिल्ली में जमुना का प्रवाह है। वहां सीधे सादे लोग रहते हैं। यहां सभ्यता की खराद पर चढ़े हुये मनुष्य दिखलाई देते हैं। खाने पीने, उठने बैठने, बोल चाल, चाल ढाल, रहन सहन सब में अन्तर है। बनारस की बोली सीधी सादी, दिल्ली की ऐंठी हुई। वह 'प्रेम को प्रेम' कहेंगे, यह 'प्रेम' को 'पिरेम' बोलेंगे। वह 'ब्रह्म को ब्रह्म' कहेंगे, यह उसे 'बिरेह्म' बोलेंगे। यह साधारण बात नहीं है। इन्हीं छोटी-छोटी बातों से बनारस दिल्ली का हाल जाना जा सकता है। वहां स्त्रियां धोती साड़ियाँ पहिनती हैं जो नित्य ही धोयी जाती हैं, यहां लँहगा साड़ी का रिवाज है जो कभी-कभी धोबी के घर जाती होंगी।

माया आई! बेचारी वहां भी निर्धन थी यहां भी कंगाल ही के घर उसका विवाह हुआ। जाति की गौड़ थी। गौड़ बनारस में अग्रवालों के पुरोहित होते हैं। दिल्ली में माथुरों के घर भी पुरोहिताई का काम करते हैं। अग्रवाल साग पात खाते हैं। माथुर माँस भक्षण करते हैं। माया के लिये यह बात बड़ी ही दुखदायी थी।

पहिले तो उसकी सास उठते बैठते उसके गुण ढंग बोल चाल

में दोष निकाला करती थी। यह नई थी। थोड़े दिनों तक इसने सहन शक्ति से काम लिया परन्तु लड़की पढी लिखी और चुलबुली थी। थोड़े ही दिनों में उसने दिल्ली की बोल चाल सीख ली और नित्य की छेड़छाड़ से घबराकर वह भी सामना करने के लिये तुल गई। अब सास बहू में लड़ाई की ठन गई। पति पहिले मां का पक्षपाती था परन्तु जब देखा कि स्त्री बेचारी व्यर्थ ही सताई जाती है और माँ उठते बैठते जान बूझकर उसे कोसा करती है तो यह चुप रहने लगा। यह दोनों का तमाशा देखा करता था।

सास बूढ़ी थी। बहू जवान थी। बूढ़े और जवान का मुकाबला कैसा !

एक दिन सास बोली—'पुत्तर ! महीनों हो गये बनारस से कोई खत पत्तर नहीं आया।'

बहू—'माता जी ! तुम अशुद्ध बोली बोलती हो। 'पुत्तर' कोई शब्द नहीं है। यदि कहना हो तो 'पुत्र' कहो इसी प्रकार 'पत्तर' कोई शब्द नहीं है। शुद्ध शब्द 'पत्र' है। पुत्र और पत्र कहो। पुत्तर और पत्तर न कहा करो।'

सास—'पुर्वनी ! तेरी बुद्धी मारी गई है। मुझे भाषा और साहित्य सिखाने आई है ! पूर्वी तो आप बोलना नहीं जानते। आश्चर्य है, मैं जो शबद बोलती हूँ तू उनमें मीन मेष निकालती रहती है।'

बहू—'माता जी ! आप ब्राह्मणी हैं। अशुद्ध शब्द मुंह से निकालना पाप है। 'शबद' अशुद्ध है। शुद्ध 'शब्द' है। पाणिनी जी कह गये हैं कि अशुद्ध बोलने वाले को पाप लगता है। यदि गँवार लोग ऐसा कहें तो कोई हर्ज नहीं है परन्तु ब्राह्मण या ब्राह्मणी के मुख से ऐसे शब्द शोभा नहीं देते।'

सास—'यहां के बिरहमन और बिरहमनी तो ऐसा ही बोलते हैं।'

बहू—'फिर अशुद्ध शब्द मुख से निकला। 'बिरहमन' और 'बिरहमनी' न कहना चाहिये किन्तु 'ब्राह्मण' और 'ब्राह्मणी' बोलना

चाहिये। माता जी ! यदि आप बनारस में होतीं तो लोग आप को कभी न कहते कि आप ब्राह्मणी हैं।'

सास अप्रसन्न हो गई—'यह पान वाला पन्नी या पनवाड़ी कौन है तूने जिसका अभी नाम लिया है ? क्या उसी से तूने विदिया पढ़ी है ?'

बहू खिलखिलाकर हँस पड़ी—'यह लो ! माता जी ! तुम को हो क्या गया है जो शुद्ध शब्द मुख से नहीं निकलते ? 'पन्नी' न कहो 'पाणिनी' कहो। यह संस्कृत व्याकरण का आचार्य हुआ है। पान बेचने वाला पनवाड़ी नहीं था, ऋषि और ब्राह्मण था। 'बिदिया' कोई बोली नहीं है। उसे 'विद्या' कहो।'

सास सिटपिटाई—तू दो अंछर क्या सीख गई कि बड़ी बूढ़ी तिरहमनियों के कान पकड़ने लग गई। मैं रिखी मुनी की बात क्या जानूँ ?'

बहू फिर मुस्कराई—'अंछर क्या है ? असली शब्द 'अक्षर' है। 'रिखी' न कहा करो, ऋषि' कहो। यदि तुम ब्राह्मणो हो तो शुद्ध उच्चारण किया करो।'

सास – 'इ परमेशुर ! यह कैसी बहू घर में आई है ? या ईशुर ! इसने तो नाक में दम कर दिया। मेरा बोलना कठिन हो गया।'

बहू—'फिर वही बात ! 'परमेशुर' नहीं 'परमेश्वर' कहो। 'ईशुर' क्या होता है ? ईश्वर बोलो।'

सास—'बहू ! तेरी बात सुनकर मेरे पिरान सूखे जाते हैं। मैं क्या करूँ ! किधर चली जाऊँ !'

बहू—'पिरान' क्या है 'प्राण' बोलो तब समझ में आये।

सास—'जलम जली ! तू चुप न रहेगी ?'

बहू—'जन्म जली कहो, 'जलम जली' अशुद्ध है।'

सास—'मैं जो बोलती हूँ तू उसी में दोष निकालती है। बड़ी सुरसती बनकर आई है कहीं की !'

दयाल फकीर कृत पुस्तकों की सूची

मानव धर्म प्रकाश हिन्दी	-७५	सार का सार भाग १,२	२.७५
आवागवन उर्फ) हिन्दी	१-००	सचाई उर्दू या हिन्दी	.४०
जीवन रहस्य) उर्दू	-७५	निष्कलंक अवतार हिन्दी	.५०
मनुष्य बनो हिन्दी	-७५	मानव कल्याण भाग १,२,३,४,५	५ ००
सार भेद	-२५	गरुण पुराण रहस्य	१.००
जगत कल्याण हिन्दी	-७५	अद्भुत मोती	.७५
जगत उभार	१-००	आजादी की कुंजी	.४०
आकाशीय रचना	.५०	गुरु वन्दना	.६५
फकीर वचनामृत	.४०	कबीरसार शब्द व्याख्या	१.००
राधास्वामी शताब्दी पर मेरी भेंट		शिव फकीर पत्रावली	१.२५
भाग १—२	२-२५	हृदय उद्गार	१.००
कर्मभोग या मौज भाग १, २	१-७५	अगम वाणी भाग १,२,३ प्रति	१.००
५० वर्षीय फकीर अनुभव	.५०	सुरत शब्द योग	१.००
सत सतगुरु वक्त	१-५०	सत सनातन धर्म अथवा—	
उन्नति मार्ग	-२५	सत मानव धर्म	३.००
विश्व धर्म भाग १ व २	१-७५	निर्वाण से परे	१.००
गुरु महिमा	१-००	रचना का भेद	.७५
अजायब पुरुष	१-००	बेहद्दी या अपार के परे	१)२५
मेरा ८३ वर्षीय अनुभव	१-२५	ईश्वर दर्शन	१)
आदि अन्त	१-२५	मत उपदेश	०.५०
सारतत्व सचाई और शान्ति	१.००	मेरी धार्मिक खोज	.५०

महर्षि शिवव्रतलाल कृत पुस्तकों की सूची

महर्षि शिव की जीवनी उर्दू	५.००	आत्मिक उत्कर्ष	१.००
दयाल योग ,,	२.५०	विचारांजलि	१.५०
ववक कल्पद्रुम	१.५०	मूर्ति पूजा रहस्य	०.२५
फलता के साधन हिन्दी	.५०	सत्य सनातन आर्य धर्म	१.२५
अन्तर्मुखी	.५०	रहिमन नीति दोहावली	.५०
मर्म सन्देश	.५०	योग आसन	.२५
गुप्त रहस्य	१.००	सप्त ऋषि वृतान्त	.७५
जैन वृतान्त	.७५	राजस्थान की ललित ललनायें	१.००
नवजीवन सुधार	,७५	सत्संग के ८ वचन	०.७५
कथा कल्पद्रुम	१.००	नन्दू भाई की साखी	१.२५
सप्ताह विचार	१.५०	हितोपदेश	५.५०

Registered No. L. 15

महर्षि शिवब्रतलाल कृत हिंदी पुस्तकों की सूची

सम्पूर्ण महारामायण सजिल्द	६)
श्रीमद्भगवद्गीता भाग १–२	२.५०
नानक योग ३ भाग सजिल्द	४)
राधास्वामी योग ६ भाग सजिल्द	५)
कबीर योग प्रथम भाग	२)
" " द्वतीय "	१.७५
" " तृतीय "	१.५०
शरणागति योग	.७५
उपासना योग	.७५
कर्म योग	.७५
आनन्द योग प्रकाश	२.५०
Light on Anand yog	.३)
आत्मिक प्रायमर	.५०
कबीर आद्यज्ञान प्रकाश	२.००
पंथ सन्देश	३.००

उपन्यास

शाही पति परायण	१.००
शाही भूत	१.००
शाही डाकू	१.७५
शाही लकड़हारा	२.६०
शाही जादूगरनी	१.५०
शाही भिखारी	२.६०
आबदार मोती	१.७५
ताबदार मोती	१.५०

ओ३म् नाविल	२.५०
झलकदार मोती	२.००
गिरहदार मोती	१.००
शाहवार मोती	१.२५
रंगदार मोती	२.००
दलदार मोती	२.७५
कजदार मोती	२.००
शिवजी की अद्भुत कहानी	१.५०

पाठ तथा गाने के शब्द

फकीर भनजावली	१.००
शब्द गुन्जार भाग १,२,३	३.५०
शब्दों का गुटका	०.५०
नन्दू भाई की साखी	१.२५
कबीर गूढ़ शब्द व्याख्या	१.००
कबीर शब्दावली	.७५
नैयर आजम प्र०भा०	१.५०
मत कबीर की साखी	१.७५
पिंगल साखी	.६०
स्वास्थ्य और भोजन	१.००
रा०स्वा०मतप्रकाश वचनसार	१.००
जीवन सुधार	१.२५
अनमोल उपदेश	१.००
विचार दर्पण	१.००
विचारशक्ति अथवा मनोविज्ञान	१.५०

मैनेजर

मिलने का पता—

शिव साहित्य प्रकाशन मण्डल कार्यालय—'शिव'

पोस्ट दयालनगर, अलीगढ़(उ०प्र०)लेखराज नगर, अलीगढ़(उ०प्र०)

सतीशचन्द्र मीतल द्वारा दयाल प्रिन्टिंग प्रेस, लेखराज नगर, अलीगढ़ में मु